

श्रीनिवास-ताताचार्यः पञ्च-काल-क्रिया-दीपः①

श्रीनिवास-तातार्यः

Table of Contents

| | |
|------------------------------------|----|
| ॐ | 2 |
| परिष्कार्यम् | 3 |
| ०१ अभिगमनम् | 4 |
| ०१ प्रातर् अभिगमन-सङ्कल्पः | 4 |
| ०२ सन्ध्या-पूर्व-काल-कर्तव्य-क्रमः | 4 |
| मल-मूत्रोत्सर्जन-शौचादि-विधिः | 4 |
| आचमन-विधिः | 7 |
| दन्त-धावन-विधिः | 9 |
| प्रातस्-स्नान-विधिः | 10 |
| वस्त्र-धारण-प्रकारः | 11 |
| ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारण-क्रमः | 12 |
| ०३ प्रातस् सन्ध्या-वन्दन-क्रमः | 13 |
| ०४ आधार-शक्ति-तर्पण-क्रमः | 14 |
| ०५ ब्रह्म-यज्ञ-क्रमः | 15 |
| ०६ औपासनानुष्ठान-प्रकारः | 17 |
| ०७ भगवद्-अभिगमन-प्रकारः | 17 |
| ०८ अभिगमन-समापन-सात्त्विक-त्यागः | 18 |
| ०२ उपादानम् | 19 |
| ०१ उपादान-सङ्कल्पः | 19 |
| ०२ पूजोपकरण-द्रव्य-संपादन-प्रकारः | 19 |
| ०१ दर्भ-समिदादि-सङ्ग्रहण-विधिः | 19 |
| ०२ पुष्प-तुलस्यौ | 19 |
| पुष्प-तुलस्य-आहरण-प्रकारः | 20 |
| त्याज्योपादेय-पुष्प-विवेकः | 20 |
| ०३ पात्रासन-ध्वजादि | 21 |
| ०३ सात्त्विक-त्यागः | 21 |
| ०३ इज्या | 22 |
| ०१ सङ्कल्पादि | 22 |

| | |
|---|----|
| माध्याह्निक-स्नान-विधि: | 22 |
| भगवत्-सन्निधौ शरणागति-प्रकारः | 23 |
| इज्यार्थ-विशेष-सङ्कल्पः | 24 |
| ०२ भूत-शुद्ध्यादि | 25 |
| प्राणायाम-विधि: | 25 |
| संहार-न्यासः | 25 |
| पञ्चोपनिषन्-न्यासः | 25 |
| तत्त्व-न्यास-प्रकारः | 26 |
| शोषणादि | 27 |
| भगवत्-प्राप्त्यादि | 28 |
| पद्मे स्थापनम् | 29 |
| सृष्टि-न्यासः | 30 |
| तत्त्व-न्यासः | 30 |
| पञ्चोपनिषन्-न्यासः | 32 |
| प्राण-प्रतिष्ठा-प्रकारः | 32 |
| अलङ्कारः | 34 |
| मातृका-न्यास-प्रकारः | 35 |
| अन्तर् मातृका-न्यासः | 35 |
| वासुदेवादि-युत-वैष्णव-मातृका-न्यासाः | 36 |
| ०३ समाराधनोपयुक्त-मन्त्र-न्यासः | 39 |
| प्रणव-मन्त्र-न्यासादि-प्रकारः | 39 |
| प्रासाद-मन्त्र-न्यासादि | 40 |
| अजपा-मन्त्र-न्यासादि | 41 |
| पञ्चोपनिषन् मन्त्रस्य ऋषिच् छन्दो देवताः | 41 |
| अष्टाक्षर-मन्त्रस्य न्यासादि-जप-प्रकारः | 41 |
| अष्टाक्षर-मन्त्रस्य देह-न्यासः | 45 |
| द्वयाख्य-महा-मन्त्रस्य ऋषिच् छन्दो देवता-न्यासादि | 46 |
| चरम-श्लोक-मन्त्र-न्यासादि | 48 |
| वासुदेव-द्वादशाक्षर-मन्त्र-न्यासादि | 48 |
| विष्णु-षड्-अक्षर-मन्त्र-न्यासादि | 51 |
| विष्णु-गायत्री-मन्त्र-न्यासादि | 52 |

| | |
|------------------------------------|----|
| श्री-मन्त्रस्य ऋष्यादि | 52 |
| पुरुष-सूक्त-मन्त्रस्य ऋष्यादि | 53 |
| श्री-सूक्त-मन्त्रस्य ऋष्यादि | 54 |
| सालग्राम-महा-मन्त्रस्य ऋष्यादि | 55 |
| ०४ षड्-आसनोपेत-भगवद्-आराधन-प्रयोगः | 55 |
| हृद्-यागः | 56 |
| द्रव्य-संस्कारः | 56 |
| अनुज्ञा | 61 |
| विष्ण्व्-आवाहनादि | 61 |
| मुद्राः | 64 |
| श्र्य्-आद्य्-आवाहनम् | 65 |
| अलङ्कारादि-कल्पनम् | 67 |
| आत्म-निवेदनादि | 71 |
| मन्त्रासनम् | 72 |
| स्नानासनम् | 73 |
| अलङ्कारासनम् | 76 |
| भोज्यासनम् | 79 |
| पुनर्-मन्त्रासनम् | 82 |
| नित्य-मुक्तार्चनम् | 83 |
| पर्यङ्कासनम् | 83 |
| सात्त्विक-त्यागादि | 84 |
| उद्धासनम् | 84 |
| क्षमापणम् | 85 |
| पिधानादि | 85 |
| अङ्ग-सङ्ग्रहः | 86 |
| निर्माल्यम् | 88 |
| ०५ वैष्णव-होम-वैश्वदेवौ | 88 |
| ०६ भोजन-विधिः | 89 |
| शौचान्तम् | 89 |
| पात्रसादनान्तम् | 89 |
| ध्यान-जपौ | 90 |

| | |
|---------------------------------|-----|
| न्यासः | 90 |
| परिवेषणादि | 91 |
| परिषेचनान्तम् | 91 |
| प्राणाग्नि-होत्र-प्रकारः | 92 |
| खादनम् | 92 |
| उत्तरापोशनादि | 93 |
| ताम्बूलान्तम् | 94 |
| ०७ इज्या-समापन-सात्त्विक-त्यागः | 94 |
| ०४ स्वाध्यायः | 96 |
| ०१ स्वाध्यायार्थ-सङ्कल्पः | 96 |
| ०२ श्रवण-मनन-प्रवचन-जपादि | 96 |
| ०३ सायं-सन्ध्योपासन-विधिः | 97 |
| ०४ भगवद्-अर्चनादि | 97 |
| ०५ स्वाध्यायः | 97 |
| ०६ समापन-सात्त्विक-त्यागः | 98 |
| ०५ योगः | 100 |
| ०१ योगार्थ-सङ्कल्पः | 100 |
| ०२ समाधिः | 100 |
| ०१ आसनादि | 100 |
| ०२ धारणम् | 101 |
| ०३ गति-चिन्तनादि | 103 |
| आत्म-स्वरूपम् | 103 |
| आध्यात्मिकादि-ताप-त्रय-निरूपणम् | 103 |
| नरकानुभव-प्रकारः | 104 |
| स्वर्ग-प्राप्ति-प्रकारः | 105 |
| वैकुण्ठ-प्राप्तिः | 105 |
| ०४ ध्यानादि | 107 |
| ०५ कार्यता | 107 |
| ०३ योग-समापन-सात्त्विक-त्यागः | 108 |
| ०४ स्वापादि-प्रकारः | 108 |
| ०६ कर्म-विचारः | 110 |

| | |
|-----------------------------------|-----|
| ०१ फल-कर्तृत्व-त्यागः | 110 |
| फल-भोगावश्यम्भाव-दोष-परिहारः | 115 |
| ०२ श्रौत-कर्मणां महाराधन-रूपत्वम् | 116 |
| ०३ श्रौते पाञ्चरात्रांशाः | 120 |
| ०१ मूल-मन्त्रः | 120 |
| ०२ प्रक्रिया | 121 |
| ०३ सोमे यज्ञ-वराह-ध्यान-प्रकारः | 126 |
| ०४ सोमे महा-पुरुष-ध्यान-प्रकारः | 127 |
| ०४ श्रौते हिंसा | 129 |
| आक्षेपः | 129 |
| पिष्ट-पशु-खण्डनम् | 129 |
| उपरिचरोपाख्यानम् | 130 |
| पिष्ट-पशुः कार्त-युगे | 130 |
| प्रत्यक्ष-पशु-याग-समर्थनम् | 131 |
| ०५ नष्टाग्निभिर् जपः | 133 |
| ०६ आहिताग्नि-यति-दाहः | 135 |
| Appendix - +Dyugangā द्युगङ्गा | 137 |
| Goals ध्येयानि | 137 |
| संस्कृतानुवादः | 137 |
| Contribution दानम् | 138 |



Source: TW1

1. https://archive.org/details/HCAO_pancha-kala-kriya-dipa-by-shrinivas-tathacharya-edited-by-ramanuja-tathachariar-

परिष्कार्यम्①

[वन्दे जगद्-गुरुं श्रीशं
यस्य चाज्ञा श्रुति-स्मृती ।]
यस्य लीला जगज्-जन्म-
स्थिति-संहरणादयः ॥

प्रणमाम्य् अस्मद्-आचार्यान्
तद्-गुरून् भाष्य-कृन्-मुखान् ।
यैर् **अ-कण्टकिता** मार्गा
दैविकाः पाञ्चरात्रिकाः ॥

कुमार-तातयाचार्यं
सदाचार-पदं सदा ।
वेदान्ताचार्य-सिद्धान्त-
विजय-ध्वजम् **आश्रये** ॥

शत-क्रतु-चतुर्-वेदि-
श्रीनिवासार्य-देशिकः ।
पञ्च-काल-क्रिया-दीपं
कुरुते विदुषां मुदे ॥

[तत्र नित्यस्य भगवत्-
समाराधन-कर्मणः ।]
याग-ध्यानादि-रूपस्य
प्रयोगो ह्य् **अभिधीयते** ॥

०१ अभिगमनम्①

०१ प्रातर् अभिगमन-सङ्कल्पः②

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुरात्म्य-
भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन अभिगमनेन भगवत्-कर्मणा भगवन्तम्
अर्चयिष्यामि ।

इत्य् अभिगमनं सङ्कल्प्य

ओं भगवतो बलेन भगवतो वीर्येण भगवतस् तेजसा भगवतः कर्मणा भगवतः कर्म
करिष्यामि वासुदेवस्य ।

इत्य् अनुसन्धायात्मानं

भगवान् एव स्व-शेष-भूतेन मया स्वकीयैः कल्याणतमैर् औपचारिक-
सांस्पर्शिकाभ्यवहारिकैर् भोगैर् अखिल-परिजन-परिच्छदान्वितं स्वात्मानं पीतं
कारयितुम् उपक्रमते

इति चानुसन्धाय, "ओं नमः क्षिति-धराय महा-वराहाये"ति नमः पूर्वेण क्षिति-धर-लिङ्गेन मन्त्रेण
श्री-वराहं नमस्कृत्य

०२ सन्ध्या-पूर्व-काल-कर्तव्य-क्रमः②

नमो वराह-रूपस्य प्रियायै हरि-वल्लभे ।
त्वं माता सर्व-भूतानां पाद-स्पर्शं क्षमस्व मे ॥
[नमो ऽस्तु प्रिय-दलायै तुभ्यं देवि वसुन्धरे ।
त्वं माता सर्व-भूतानां पाद-स्पर्शं क्षमस्व मे ॥]

इति महा-भारतादिषूक्तेन मन्त्रेण महा-वराह-महिषीं भुवं प्रणम्य प्रथमं वाम-पादं भूमौ विन्यस्य
"विष्णोः क्रमो ऽसी"ति विष्णु-क्रमण-मन्त्रेण पद-क्रमान् कुर्वन् पादेन्द्रियाधिदैवतं त्रिविक्रमं
विष्णुं ध्यात्वा, दर्भ-तिलाक्षत-वस्त्रादिकं दृष्टादृष्ट-साधनं स्नानोपकरणं सर्वं समाहृत्य तमस्-
तिरोहित-दुष्ट-जन्तु-पलायनार्थं वैष्णवं दण्डं सङ्गृह्य निर्गम-मार्गं सञ्चाल्य गृहान् निर्गच्छन् "ओं
नमः केशवाय" इति केशवम् अनुध्यायेत् ।

[[6]]

मल-मूत्रोत्सर्जन-शौचादि-विधिः③

ततः स्वाश्रम-ग्रामादिभ्यो बहिर् नैऋत्यां दिशि द्वित्रेषु पात-प्रमितां भुवम् अतिक्रम्य शुद्ध-देशे निक्षिप्त-स्नातोपकरणो विविक्त-देशं गत्वा यज्ञोपवीतं दक्षिणे कर्णे शिरसि वा निधायोत्तरीयेणावकुण्ठनं कृत्वा घ्राणास्ये वाससा संवेष्ट्यायाज्ञीयैर् अनार्द्रैस् तृण-पर्ण-काष्ठैर् लोष्ठेन वा भूमिं सज्छाद्य सन्ध्यासु चोदङ्-मुखो रात्रौ दक्षिणा-मुख ऊर्ध्वम् अधस् तिर्यक् चापश्यन् नभो-भूम्यन्तरं च पश्यन् अन-अनन्य-चित्तश् चिरम् अवस्थानं कुर्वन् पाणिना मौलिम् अ-स्पृशन् किञ्चिद् अप्य् अन-उच्चरन् असोपानत्को देवालय--नदी-तीर--दर्भ-पृष्ठ--शाड्वल-वल्मीक--गिरि-पृष्ठ--जल-यज्ञ-भू--फाल--कृष्ट-भू--यज्ञीय-द्रुम-छाया--वर्त्म-गोष्ठ-भस्म-तुषाराङ्गार-श्मशान-पराशुचि-युक्तोषर--चतुष्-पथ--सस्याढ्य-भू--कुञ्ज--व्यतिरिक्त-स्थलेषु सोम-सूर्याग्नि-तीर्थ-ब्राह्मण-सन्ध्याम्बु-गो-स्त्री-वायु-देवताभिमुख्यं वर्जयन् मूत्र-पुरीषे कुर्यात् । न वेगं धारयेन् नोपरुद्धः क्रियाः कुर्यात् । यावच् चेद् वेगं धारयति तावद् अप्रयतस् स्यात् । नीहाराद्य-अन्ध-कार-जनिते दिङ्-मोहने प्राण-बाध-भयेषु च यथा-सुखं मूत्र-पुरीषोत्सर्जनं कुर्यात् । यदि विस्मृतोपवीती मल-पुरीषे कुर्यात् तत्-सूत्रं परित्यज्य सूत्रान्तरं धारयेत् । जलालाभ-स्थले यदि रेतो-मूत्र-पुरीषोत्सर्जनं कुर्यात् तर्ह्य् अ-कृत-शौचश् चेत् आसूर्य-दर्शनं तिष्ठेत् । उदके लब्धे यथा-विधि शौचं कृत्वा स-चेल-स्नानं अहो-रात्रावासं महा-व्याहृतिभिर् होमं च कुर्यात् । यद्य् आद्र-वाससा विण्-मूत्रे कुर्यात् प्राणायाम-त्रयं कृत्वा पुनस् स्नानेन शुद्ध्येत् । न पर्ण-लोष्ठाश्मभिर् मल-पुरीषापकर्षणं कुर्यात् । सव्य-करेण गृहीत-शिश्र एव मूत्र-पुरीषोत्सर्जनं कुर्यात् । यतिस् तु त्रि-दण्डम् उपदण्डेन बन्धयेत् उपदण्डाभावे निधान-स्थले चाशुद्धे त्रि-दण्ड-सहित एव मूत्र-पुरीषे कुर्यात् ।

[[7]]

तत उत्थाय शौच-पर्यन्तं शिश्रम् अनुत्सृजन् पूर्व-गृहीतां स-सिकतां मृदं दक्षिण-हस्ततेन गृहीत्वा प्राग्-उदीच्यां उदीच्यां वा शौच-देशं गत्वा मृदं निधायोर्ध्व-जानुर् आसीन उरु-द्वयान्त-स्थेन पाणिना सव्येन मृदं प्रक्षालयेत् । बहिर् जीनु-स्थितेन दक्षिण-पाणिना जलं दद्यात् । एवं पूर्वं जलेन प्रक्षाल्य पश्चान् मृदा पश्चाद् अम्बुभिः प्रक्षालयेत् । सुनिर्निक्ते मृदं दद्यान् मृदन्ते जलं दद्यात् प्रसृति-मात्रां प्रथमां मृदं, तद्-अधिकां द्वितीयां तद्-अधिकां तृतीयां तृतीयावद् अन्यां मृदो दद्यात् । लिङ्ग-शौचे त्रि-पर्व-सङ्ख्या-पूरितां मृदं दद्यात् । हस्तादिष्व् अवदान-समां मृदं दद्यात् । एवं द्वादश-कृत्वो गुद-शौचं कृत्वा पञ्च-कृत्वः कर-शौचं कृत्वा लिङ्ग-शौचं कृत्वा ततः कर-शौचं कृत्वा पद-द्वयं संयोज्य त्रिः मृदा प्रक्षाल्य पुनः पञ्च-कृत्वः करौ मृदा प्रक्षाल्य शौच-भू-तलं प्रक्षालयेत् । दिवा चेद् एवं रात्रौ चेद् अर्धं, आतुरस्य तद्-अर्धं, तथा ऽध्वनि, अशक्तस्य यथा-शक्ति, योषितां शूद्राणां चार्धं, गन्ध-लेप-क्षय-करं वा अन-उपनीतस्य, गन्ध-लेप-क्षय-करं यथोक्तं गृह-स्थानां, द्वि-गुणं ब्रह्म-चारिणां, त्रि-गुणं वानप्र-स्थानां, चतुर-गुणं यतीनां शौचं विधीयते । वापी-कूप-तटाकादिषु कथञ्चिद् अपि जलोद्धरणासम्भवे ऽपि जलाद् अरन्ति-मात्र-प्रदेशं त्यक्त्वासीनो मणि-बन्धात् परतो ऽरन्ति-मालात् परतो वा जलान्तर्गतां मृदं गृहीत्वा शौचं कुर्यात् । बाह्य-मृत्तिकान् नाहरेत् । शौच-भू-तलं च शोधयेत् । अन्यत्र नद्यादिषु तीर्थेषु च शौचं न कुर्यात् । तेषु उद्धृत-वारिणैव कुर्यात् । उद्धृत्य शौचे तु मृत्तिका-वारि-दौ परिचारकौ कर्तव्यौ । मूत्र-पुरीष-विसर्जनात् पूर्वम् एव स-जलं भाजनं संस्थाप्य कूलात् परीक्षितां संसृष्ट-सिकतां मृदं आहरेत् ।

[[8]]

यतिः पश्चान् मृदम् आहरेत् । यथा-विधि शौचं कृत्वा सोत्तरीय-स्नानं कुर्यात् । अङ्गार-तुष-
कीटास्थि-शर्कराश्म-मलान्विताम् । कुड्य-पात-श्मशानोत्थां मृदं नाददीत । आखु-कृष्टात्
वल्मीकात् पांसुलात् कर्दमान् मार्गात् ऊषरात् परस्य शैच-शिष्टाच्च च मृदं नाहरेत् । यदा
वालुकाभिश् शौचं कुर्यात् तदा द्वि-गुणं कुर्यात् । दिवा सन्ध्यासु चोदङ्-मुखो रात्रौ चेद् दक्षिणा-
मुखः कुर्यात् । दक्षिणं पाणिं नाधः शौचे नियोजयेत् । नाभेर् ऊर्ध्वं वाम-हस्तं न नियोजयेत् । मूत्र-
शौचे त्व एकां मृदं लिङ्गे, सव्ये करे तिस्रो हस्तयोर् द्वे दद्यात् । शुक्ल-शौचे द्वि-गुणं दद्यात् । विण्-
मूत्र-विसर्जनार्थं उपविष्टस् तद् यदि न कुर्याद् [अर्ध-शौचं कुर्यात् ॥] ब्रह्म-चारी यतिश् च नान्तर्
लिङ्गं विशोधयेत् । तयोर् अन्तर् लिङ्ग-शौचे चान्द्रायणं विधीयते । मूत्र-पुरीषयोर् एकैकस्य प्रवृत्तौ
तस्यैव शुद्धिः क्रमेणोभय-प्रवृत्तौ यथा-क्रमं युगपत् प्रवृत्तौ तु पुरीष-शुद्धिं प्रथमं कृत्वा मूत्र-शौचं
कुर्यात् । ततः पाद-शौचं कृत्वा कर-शौचं कुर्याद् एवं सकृच्च छौचं कृत्वा पुनर् एवं कुर्याद् इति
निष्कर्षः । नाभेर् अधस्माद्[[?]] बाहुषु च कायिकैर् द्वादशभिर् मलैः सुरभि-मद्यैर् वोपहतो
मृत्-तोयैः पञ्चभिस् तद्-अङ्गं प्रक्षाल्याचान्तश् शुद्ध्येत् । अन्यत्रोपहतो मृत्-तोयैः पञ्चभिः तद्-
अङ्गं प्रक्षाल्य स्नानेन शुद्ध्येत् । इन्द्रियेषु दशनच्च-छदे चोपहतः उपोष्य स्नात्वा पञ्च-गव्य-
प्राशनेन शुद्ध्येत् । परस्य तु शोणित-रेतो-विण्-मूत्र-मज्जा-स्वेद-कर्ण-नेत्र-नासिका-स्थ-मल-
स्पर्शं चत्वारो वर्णा द्वात्रिंशन् मृत्तिकाभिः तद्-अङ्गं प्रक्षाल्य स्नात्वा शुद्ध्येयुः । भुज्जानस्य तु
विप्रस्य गुदं प्रस्त्रवेद् यदि यथा-विधि शौचं कृत्वा स्नानं चरित्वोपवासं कृत्वा पञ्च-गव्येन शुद्ध्येत्
। मूत्र-पुरीषादि-करणे श्वादि-स्पृष्टः स्नात्वा पुरुष-सूक्तं जपेत् ।

[[9]]

ननु

पञ्चधा लिङ्ग-शौचं स्यात् गुद-शौचं त्रि-वेष्टितम् ।
पादयोर् लिङ्गवच्च छौचं हस्तयोश् च चतुर्-गुणम् ॥
द्वे लिङ्गे मृत्तिके देये पञ्चापाने करे दश ।
उभयोस् सप्त दातव्यं मृदश् शुद्धिम् अभीप्सता

इति शाण्डिल्य-वसिष्ठादि-प्रभृतिषु मृत्-सङ्ख्या-भेदो दृश्यते ।

न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचं शुद्धिम् अभीप्सता ।
प्रायश्चित्तेन युज्येत विहितातिक्रमे कृते ॥

इति दक्ष-स्मृतौ विहित-सङ्ख्याया अतिक्रमे प्रायश्चित्तं च प्रतिपाद्यते । तत् कया संख्यया शौचं
कर्तव्यम् इति चेद् उच्यते :-

देशं कालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्य-प्रयोजनम् ।
उपपत्तिम् अवस्थां च ज्ञात्वा शौचं समाचरेत् ॥
यावच्च च शुद्धिं मन्येत तावच्च छौचं समाचरेत् ।

प्रमाणं शौच-सङ्ख्या वा न शिष्टैर् उपदिश्यते ॥
यावन् नापैत्य् अ-मेध्यान्तात् गन्धो लेपश् च तत्-कृते ।
तावन् मृद्-वारि देयं स्यात् सर्वासु द्रव्य-शुद्धिषु ॥

[[10]]

शौचं तु द्वि-विधं प्रोक्तं बाह्यम् आभ्यन्तरं तथा ।
मृज्-जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भाव-शुद्धिस् तथान्तरम् ॥
गङ्गा-तोयेन कृत्स्नेन मृद्-भारैश् च नगोपमैः ।
आ मृत्योर् आचरेच् छौचं भावदुष्टो न शुद्ध्यति ॥

इति बोधायन-देवल-मनु-वैयाघ्र-पादादि-स्मरणात्

देश-कालाद्य्-अनुगुणं यावन् मनश्-शुद्धि-विहित-सङ्ख्यासु विविधासु यावत्यां सङ्ख्यायां गन्ध-
लेपापकर्षणं मन्यते तावत्यां यस्यां चित्-सौख्यायां शौच-समापनं कर्तव्यम् इति स्व-वर्णाश्रमाद्य्-
अवस्थाद्य्-अनुगुणादृष्टार्थ-मृत्-सङ्ख्या । वर्णपरिणामादि-नियमवद्-गन्ध-लेप-क्षय-करं स्पर्श-
पीडादि-रहितं यावत् भाव-शुद्धि-शौचं कृत्वा अपां द्वादशभिर् गण्डूषैः मुख-शुद्धिं कृत्वा पाणी
अरत्नि-पर्यन्तं पादौ च जानु-पर्यन्तं प्रक्षाल्य यज्ञोपवीती बद्ध-शिखः पवित्र-पाणिर् अप्रावृत्-
कण्ठ-शिराः शुष्क-वासाश् शुचौ देशे प्राङ्-मुखो वोदङ्ग-मुखो वा पादौ जले स्थले च कृत्वा ऊर्ध्व-
जानुर् आसीनो दक्षिणं बाहुं जान्व्-अन्तरे कृत्वा सव्येन पाणिना जलं स्पृशन् दक्षिणं हस्त-तलं
गो-कर्णाकारं विन्यस्य तोयं गृहीत्वा अङ्गुष्ठ-कनिष्ठे मुक्त्वा विष्णु-तीर्थ-सञ्ज्ञे कर-तलोदरे
अवस्थापयेत् । तद् उक्तं भारते आनुशासनिके एक-षष्टितमे ऽध्याये नारदः --

[[11]]

आचमन-विधिः ③

देवर्षि-पितृ-तीर्थानि ब्राह्मं मध्ये ऽथ वैष्णवम् । नृणां तीर्थानि पञ्चाहुः पाणि-
सन्निहितानि वै ॥
आद्य-तीर्थं तु तीर्थानां वैष्णवो भाग उच्यते ।
यत्रोपस्पृश्य वर्णानां चतुर्णां वर्धते कुलम् ॥ पितृ-दैवत्य-कार्याणि वर्धन्ते प्रेत्य चेह च
॥

इति ।

ततः

ओं अच्युताय नमः ओं अनन्ताय नमः ओं गोविन्दाय नमः इति

मन्त्रैः ब्राह्मेण तीर्थेनाशब्दं माष-निमग्न-मात्रा हृदयङ्गमास् त्रिर् अपः पीत्वा "ओं केशवाय नमः
ओं नारायणाय नमः" इति ब्राह्मेण तीर्थेन अधो द्विः परिमृज्य मध्यमाभिस् तिसृभिर् अङ्गुलीभिस्
तूष्णीं सकृद् ओष्ठव् उपस्पृश्य मुखं परिमृज्य दक्षिणेन पाणिना सव्यं पाणिं पादौ शिरश् च प्रोक्ष्य

| ओं माधवाय नमः ओं गोविन्दाय नमः

इत्य् अङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यां च चक्षुषी संस्पृश्याप उपस्पृश्य,

| ओं विष्णवे नमः ओं मधुसूदनाय नमः

इति तर्जन्य्-अङ्गुष्ठाभ्यां नासिके संस्पृश्याप उपस्पृश्य,

| ओं त्रिविक्रमाय नमः ओं वामनाय नमः

इति अङ्गुष्ठ-कनिष्ठिकाभ्यां श्रोत्रे संस्पृश्याप उपस्पृश्य,

| ओं श्री-धराय नमः ओं हृषीकेशाय नमः

इति मध्यमाङ्गुष्ठाभ्यां भुजौ संस्पृश्याप उपस्पृश्य, "ओं पद्म-नाभाय नमः" इति सर्वाभिर्
अङ्गुलीभिर् नाभिं संस्पृश्य, "ओं दामोदराय नमः" इति तलेन हृदयं संस्पृश्याप उपस्पृश्य, "ओं
श्री-वासुदेवाय नमः" इति सर्वाभिर् अङ्गुलीभिर् मूर्धानं संस्पृश्याप उपस्पृश्य, सव्ये पाणौ शेषा
आपो निनयेत् । अथ ब्रह्म-यज्ञाचमन-प्रकारः ।

| ओं भूः ऋग्-वेदः प्रीणातु, ओं भुवः यजुर्-वेदः प्रीणातु, ओं सुत्रः साम-वेदः प्रीणातु

इति त्रिर् अपः पीत्वा

| ओं भूर् भुवस् सुवः ऋग्-यजुस्-सामाथर्वाङ्गिरसः प्रीणन्तु,

[[12]]

"इतिहास-पुराणे पीयेताम्" इत्य् ओष्ठौ ब्राह्मेण तीर्थेनोपस्पृश्य, मध्यमाभिस् तिसृभिर्
अङ्गुलीभिर् असकृद् ओष्ठाव् उपस्पृश्य, मुखं परिमृज्य, "अग्निः प्रीणात्" इति दक्षिणेन पाणिना
सव्यं पाणिं प्रोक्ष्य, "विष्णुः प्रीणात्" इति पादौ शिरश् च प्रोक्ष्य, "चन्द्रादित्यौ प्रीयेताम्" इत्य्
अङ्गुष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यां चक्षुषी संस्पृश्य, "प्राणापानौ प्रीयेताम्" इति नासिके संस्पृश्य,
"प्रभासादि-सर्व-तीर्थानि प्रीणन्त्" इति अङ्गुष्ठ-कनिष्ठिकाभ्यां श्रोत्रे संस्पृश्य, "परमात्मा
प्रीणात्" इति तलेन हृदयं, "श्रीः प्रीणात्" इति शिरश् च संस्पृशेत् । सर्वत्राङ्गोपस्पर्शने अप
उपस्पृशेत् ।

| अन्ते वा सव्ये पाणौ शेषा अपो निनयेत्

इति पैठीनस्य-उक्त-क्रमेण ब्रह्म-यज्ञ-समये आचमनं कुर्यात् । अत्राचमन-प्रकारा बहुधा धर्म-शास्त्रेषु भगवच्-छास्त्रेषु पुराणादिषु च प्रतिपादिताः । तत्र स्व-सूत्रोक्तम् अन्यद् वा यथा-शक्ति यथोपदेशम् आचमनं कुर्यात् । ग्रन्थि-युक्तेन ग्रन्थि-हीनेन वा दर्भेण युक्त-करः कर्माङ्गाचमनं कुर्यात् । कर्माङ्ग-व्यतिरिक्ताचमनं ग्रन्थि-हीनेन दर्भेण युक्त एव कुर्यात् । तदा तत्-पवित्रं परित्यज्य पुनर् आचामेत् । भुक्तोच्छिष्टं तु पवित्रं ग्रन्थि-युक्तं ग्रन्थि-हीनं वा परित्यजेत् । ब्राह्मेणैव तीर्थेनाचामेत् न काय-दैव-पितृ-तीर्थैः । आपद्-गतः काय-दैव-वैष्णवैर् आचामेन् न पित्र्येण कदाचन आचामेत् । पाद-प्रक्षालन-शेषेण नाचामेत् । यद् आचामेद् भूमौ सावयित्वा आचामेत् । न वर्ष-धाराम्बुना ऽऽचामेत् । पक्वं कलुष-दुर्गन्ध-तैलादि-गन्ध-द्रव्य-वासितं स-फेनं स-बुद्बुदं स-मृत्तिकं कृमि-संयुक्तम् उष्णं क्षारच्-छन्नं पर्युषितं आन्तरिक्षं नख-स्पृष्टम् एक-हस्तार्पितं भिन्न-रन्ध्र-विनिर्गतम् अज-स्पृष्टं देवाभिषिक्तं हेयं च जलम् आचमने त्यजेत् । तिष्ठन् नमन् हसन् जल्पन् भाषणं शृण्वन् अन्यं स्पृशन् दिशः पश्यन् काक-श्व-खर-विट्-क्रोड-ब्रात्य-रजस्वलान्य-जाति-पतित-देवलक-भिषक्-शूद्र-सङ्कर-ज-महा-पातिकिनः पश्यन् उष्णीषी कञ्चुकी बहिर्-जानु-करो ऽन्य-धीर् नग्नो नोपस्पृशेत् ।

[[13]]

वीक्षितेन जलेनाचामेत् । रात्राव् अपि वीक्षितेनैवाचामेत् । भुक्त्वासन-स्थो ऽप्य् आचामेत् । ताम्र-कांस्य-राजत-सौवर्ण-पात्र-स्थेन जलेनाचामेत् । हृत्-कण्ठ-तालुगाभिर् अद्भिः ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशः क्रमेण शुद्धा भवन्ति । शूद्रा स्त्रियश् च सकृत् स्पृष्टाभिस् तालुगाभिर् अद्भिः शुद्धा भवन्ति । स्नान-पान-क्षुत-निष्ठीवन-स्वाप-जप-होम-दान-प्रतिग्रह-भोजन-सान्ध्य-कर्म-बलि-कर्म-वस्त्र-परिवृत्तिर् अन्योपसर्पण-चत्वर-क्रमण-श्मशानाक्रमण-स्त्री-शूद्रोच्छिष्ट-भोजनोच्छिष्ट-पुरुष-दर्शनाभोज्य-दर्शन-विण्-मूत्र-रेतोत्सर्जनाश्रु-लोहित-पात-चण्डाल-म्लेच्छ-पतित-भाषणानृत-भाषण-मार्जार-मूषिकादि-स्पर्शातिहासातिक्रोधाधोवायु-विसर्ग-शिखा-मोक्षोपवीत-विपर्यास-श्याव-दन्त-पर्यन्तोष्ठ-स्पर्श । देवार्चन-गुर्व-अभिमानादि-निमित्तेषु आचामेत् । तद्-अशक्तौ जलाभावे च दक्षिणं श्रवणं स्पृशेच् छक्ति-विषये न मुहूर्तम् अप्य् अग्रयतस् स्यात् इति विधिवद् आचम्य प्राङ्-मुखः कुक्कुटासन-संस्थितः दक्षिणं पाणिं जान्व-अन्तरा कृत्वा कण्टकि-क्षीरि-वृक्षोत्थेनावरणेन द्वादशाङ्गुलेन कनिष्ठिकाग्रवत् स्थूलेन शल्मल्य-अश्वत्थ-भव्य-धव-किंशुक-कोविदार-शमी-श्लेष्मातक-विभीतक-गुग्गुलु-क्रमुक-तिन्दु-केङ्गुद-बन्धूक-गुडाक-ताल-हिन्ताल-केतक-बृहद्-वट-खर्जूर-नालिकेर-वानीर-क्षीरिका-शियु-शिशुपा-देव-दारु-मल्लिका-कार्पास-जातास् त्यज्याः ।

दन्त-धावन-विधिः ③

स-पत्र-त्वग्-घन-ग्रन्थि-युक्त-काष्ठ-व्यतिरिक्त-काष्ठेन तृणेन पर्णेन वाभिमन्त्र्याहूतेन कुश-काशेष्टका-लोष्ट-पाषाणाङ्गार-वालुकापस्त्र[[??]]-नख-तर्जनी-मध्यमा-कनिष्ठिकाङ्गुलि-वर्जं प्रथमम् अधरतो वाम-भागारम्भं प्रदक्षिणं समन्तं दन्तान् धावयेत् । विधवा-कन्यका-ब्रह्म-चारिणो दन्त-धावनं न कुर्युः । करञ्जार्जुन-कैडर्य-शिरीष-खादिर-दूर्वाभिर् दन्त-शुद्धिं यतिः कुर्यात् । तैलाभ्यक्तस् तु दन्त-धावनं न कुर्यात् । प्रतिपत्-पर्व-नवमी-षष्ठी-तिथिषु शन्य-अर्काङ्गारक-गुरु-

वारेषु जन्म-नक्षत्रे श्राद्ध-दिनेषु उपवास-दिनेषु च काष्ठेन दन्त-शुद्धिं न कुर्यात् । नद्यां देवालये गोष्ठे श्मशाने जल-मध्यमे याग-स्थाने च दन्त-शुद्धिं न कुर्यात् ।

[[14]]

दक्षिणाभिमुखस् तिष्ठन् शयानः उदङ्-मुख आसन-स्थश् च दन्त-शुद्धिं न कुर्यात् । दन्त-काष्ठालाभे प्रतिषिद्ध-दिनेषु च तत्-तत्-रूप-पर्णैस् तृणैर् वा तेषाम् अप्य् अभावे अपां द्वादश-गण्डूषैर् मुख-शुद्धिं कुर्यात् । दन्त-काष्ठं प्रक्षाल्य भञ्जित्वा शुचौ देशे त्यजेत् ।

आयुर् इत्य् आदि-मन्त्रस्य प्रजा-पति ऋषिः अनुष्टुप्-छन्दः वनस्पतिर् देवता दन्त-काष्ठ-भञ्जने दन्त-धावने च विनियोगः ।

प्रातस्-स्नान-विधिः ③

आयुर् बलं यशो वर्चः प्रजां पशु-वसूनि च ।
ब्रह्म-प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

इत्य् उभयत्र मन्त्रः । ततः शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्याचम्य तीरं संशोध्य देश-कालौ सङ्कीर्त्य स्नानं सङ्कल्प्य

समस्त-जगद्-आधार-शङ्ख-चक्र-गदा-धर ॥
देहि देव ममानुजां युष्मत् तीर्थ-निषेवणे ॥

इति भगवन्तम् अनुज्ञाप्य "हिरण्य-शृङ्गं वरुणम्" इति जपित्वा जलम् अवगाह्य उन्मज्ज्य "सुमित्रान आप ओषधयस् सन्ति"ति स्वात्मानम् अभिषिच्य "दुर्मित्रास् तस्मै भूयासुर्" इति त्रिस् तीरे जलम् उत्सृज्य "नमो ऽग्नये ऽप्सुमते" इति नमस्कृत्य "यद् अपां क्रूरम्" इति दक्षिण-भागे अमेध्यांशं जलान् निरस्य "अत्याशनाद्" इति "गच्छ ब्रह्म स-लोकताम्" इत्य् अन्तेन पाणिना जलं त्रिर् आलोड्य पाणिना जले चतुर्-अश्रं तीर्थ-पीठम् उल्लिख्य

[[15]]

आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थम् इह सुन्दरि ।
एहि गङ्गे नमस् तुभ्यं सर्व-तीर्थ-समन्विते ॥

इति "इमं मे गङ्गे यमुने"ति गङ्गादि-पुण्य-तीर्थान्य् आवाहयामीत्य् आवाह्यानुस्मृत्य

विष्णु-वाम-पदाङ्गुष्ठ-नख-स्रोतो-विनिस्सृते ।
तद्-भक्ति-विघ्न-रूपात् त्वं गङ्गे मां मोचयै न सः ॥
सह्य-पादोद्भवे देवि श्री-रङ्गोत्सङ्ग-गामिनि ।
श्री-कावेरि नमस् तुभ्यं मम पापं व्यपोहय ॥

इति तीर्थस्य अर्घ्यं दत्त्वा मूल-मन्त्रेणाभिमन्त्र्य "आपो अस्मान् मातरश् शुन्धन्त्व" इत्य् आदित्याभिमुखो निमज्ज्योन्मज्ज्य "आपो वा इदं सर्वम्" इत्य् अपो अभिमन्त्र्य "आपो हिष्ठा मयो भुव" इति तिसृभिः "दधिक्राव्ण" इत्य् अनेन "हिरण्य-वर्णा" इत्य् अनुवाकेन च मार्जयित्वा

अघमर्षण-सूक्तस्य अघमर्षण ऋषिः अनुष्टुप्-छन्दः भाव-वृत्तो देवता।

"ऋतं च सत्यं चार्थाद्धादि"ति तृचं चतुर्-ऋचं वा जले निमग्नस् त्रि-षड्-अष्ट-कृत्वो द्वादश-कृत्वो वा ऽऽवर्तयेत् ।

[[16]]

"एष भूतस्य भव्य" इति निमज्ज्योन्मज्ज्य मूल-मन्त्रेणाभिमन्त्र्य जलाञ्जलिम् आदाय सप्त-कृत्वो ऽभिमन्त्र्य स्व-मूर्ध्नि सिञ्चेत् । एवं त्रिस् सप्त-कृत्वो वा दक्षिणेन पाणिना जलम् आदाय सप्त-कृत्वो मूल-मन्त्रेणाभिमन्त्र्य पीत्वा ऽऽचम्य स्वात्मानं सप्त-कृत्वः प्रोक्ष्य परिषिच्य विरजां ध्यात्वा तीर्थे निमग्नो भगवत्-पादारविन्द-विन्यस्त-शिरस्को ऽष्टाविंशति-वारं तद्-उपरि यावच् छक्तिं वा मूल-मन्त्रं जपित्वोन्मज्ज्य द्विर् आचम्य देवर्षि-पितृ-तर्पणं सङ्कल्प्य स्व-स्व-तीर्थेनैव गृहीत्वा स्व-स्व-तीर्थेन गो-शृङ्ग-मात्रम् उद्धृत्य वारि-स्थ एव देवान् ऋषीन् पितृन् भगवद्-आत्मकान् ध्यात्वा सन्तर्प्य, व्याहृतिभिर् व्यस्ताभिस् समस्ताभिस् तर्पयित्वा प्राचीनावीति संस्कृत-प्रमीतानां त्रीन् उदकाञ्जलीन् तीरे दत्त्वा अ-संस्कृत-प्रमीतानाम् एकं तीरे दत्त्वा तीरं गत्वा निवीती

वस्त्र-धारण-प्रकारः③

ये के चास्मत् कुले जाता अ-पुत्रा गोत्र-जा मृताः ।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्र-निष्पीडनोदकम् ॥
ये बान्धवाबान्धवाश् च ये ऽन्य-जन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिम् आयान्तु भूमौ देत्तन वारिणा ॥
यन् मया दूषितं तोयं शरीर-मल-सम्भवात् ।
तस्य पापस्य शुध्य-अर्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्य अहम् ॥

इति चतुर्-गुणी-कृतं वस्त्रान्तं सन्दर्श्य तीरे निष्पीड्यासीनः

अन्येन वाससः खण्ड-द्वयेन शिरो-ऽङ्गं च प्रत्येकं परिमृज्य "शुची वो हव्या मरुत" इति शुचि-वस्त्रं सम्प्रोक्ष्य "देवस्यत्वे"त्य् आदाय "अवधूतं रक्ष" हत्य् अवधूय "उदुत्यञ्चित्मिति" द्वाभ्यां सूर्याय दर्शयित्वा "आवहन्ती वितन्वाने"ति कौपीनाच्छादन-पूर्वकं शुक्लं वासो धृत्वा धृतोत्तरीयश् चोरु-पर्यन्तं मृज्-जलाभ्यां प्रक्षाल्य, द्विर् आचम्य-

[[17]]

ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारण-क्रमः ③

कम्बलाद्य्-आसने स्थित्वा अस्त्र-मन्त्रेण वाम-पाणि-तलं संशोध्य "अश्वक्रान्त" इति "उद्धृतासीति" च श्वेतां मृदम् आदाय प्रणवेन वाम-पाणि-तले निधाय "मृत्तिके हन मे पापम्" इत्य् अभिमन्त्र्य "आपोवा इदम्" इति जलं गृहीत्वा "गन्धद्वाराम्" इति सेचनं कृत्वा अस्त्र-मन्त्रेण रक्षां कृत्वा प्रणवेन सम्मिश्रं कृत्वा मूल-मन्त्रेणाभिमन्त्र्य नृ-सिंह-बीजं लिखित्वा

भगवान् पवित्रं वासुदेवः पवित्रं शत-धारं सहस्र-धारम् अपरिमित-धारम् अच्छिद्रम्
अक्षयम् अरिष्टम् अनन्तम् अच्युतं परिमितं परमं पवित्रं भगवान् वासुदेवः पुनातु
[[TODO: परिष्कार्यम्]]

इति पवित्र-मन्त्रेण "देवस्त्वा सविता पुनात्" इति च तोयं निक्षिप्य तर्जन्या मृदं जलं चैकी-कृत्य भगवत्-पादाम्बु-ज-युगलं स्मरन् "विष्णोर्नुकं विष्णोरराटम्" इति चाभिमन्त्र्य पञ्चोपनिषन्-मन्त्रेण मूल-मन्त्रेण वासुदेव-द्वादशाक्षरेण विष्णु-सूक्तेन चाभिमन्त्र्य प्रथमं तर्जन्या प्रणवेन मूर्ध्नि मृदं विन्यस्य प्रणवादि-नमो ऽन्यैः केशवादि-द्वादश-नामभिः ललाटोदर-मध्य-वक्षः-कण्ठ-दक्षिणोदर-भुज-स्कन्ध-वामोदर-भुज-स्कन्ध-पृष्ठ-त्रिकेषु क्रमेण ललाट-कण्ठ-स्कन्ध-त्रिकेषु चतुर्-अङ्गुलायतानि अन्यत्राष्टाङ्गुलायतानि द्वय्-अङ्गुल-विस्तृतानि ऋजूनि सान्तरालानि रम्याणि हरि-पद-संस्थानानि द्वादशोर्ध्व-पुण्ड्राणि तर्जन्या धृत्वा द्वादशाक्षर-विद्यया शेषं मूर्ध्नि विन्यस्य हरिद्रा-चूर्णं द्वादशशसु पुण्ड्र-मध्य-देशेषु धृत्वा प्रणव-सम्पुटितैर् द्वादशाक्षर-मन्त्र-स्थैर् अक्षरैः केशवादि-द्वादश-नामभिः विष्णु-गायत्र्या च अङ्गुलीभिः स्पृशन् केशवादीन् ध्यात्वा

[[18]]

चिन्तयामि श्रियोपेतं ललाटे केशवं विभुम् ।
लक्ष्म्या समेतं ध्यायामि नारायणम् अथोदरे ॥
माधवं कमला-नाथं चिन्तयामि सदोरसि ।
पद्मा-पतिं चिन्तयामि गोविन्दं कण्ठ-कूर्पके ॥
पद्मिनी-वल्लभं विष्णुं चिन्तये दक्षिणोदरे ।
दक्षिणे ऽस्मिन् भुजे पद्मा वासिनं मधुसूदनम् ॥
स्मरामि दक्षिणे स्कन्धे रमा-नाथं त्रि-विक्रमम् ।
वामे वृषाकपायीशं कुक्षौ ध्यायामि वामनम् ॥
धन्या-नाथं चिन्तयामि श्री-धरं सव्य-वाहके ।
वाम-स्कन्धे हृषी-केशं सिद्धि-नाथं विचिन्तये ॥
पृष्ठ-देशे पद्म-नाभं यज्ञेशं तं विचिन्तये ।
दामोदरं स्मरामीशं इन्दिरा-वल्लभं त्रिके ॥

इति तत्-तत्-स्थाने तत्-तन्-मूर्ति-ध्यानं कृत्वा नमस् कुर्यात् । एवं त्रयोदश-द्वादशाष्टौ षट्-चत्वार्य्-एकं वेति सङ्ख्या-भेदेन ऊर्ध्व-पुण्ड्राणि यथा-शक्ति यथा-विधि धारयेत् । तत्र मोक्षार्थं त्रयोदश-द्वादश-पुण्ड्राणि धारयेत् । तत्र ललाटादि-मूर्ध-पर्यन्तेषु पूर्वोक्तेषु त्रयोदशसु स्थानेषु

प्रणवादि-नमोन्तैः केशवादि-द्वादश-नामभिः द्वादशाक्षर-विद्यया च त्रयोदशोर्ध्व-पुण्ड्राणि धारयेत् । शिरो-व्यतिरिक्तेषु तेषु स्थानेषु द्वादशाक्षर-विद्या-व्यतिरिक्तैर् एतैर् एव मन्त्रैर् वैकल्पिकैर् द्वादशोर्ध्व-पुण्ड्राणि धारयेत् ।

[[19]]

भोगार्थी अशक्तश् च कण्ठे परितस् स्थितानि चत्वारि स्थानानि शिरश् च वर्जयित्वा ललाटादिषु अष्टसु स्थानेषु प्रत्यक्षरं विष्णु-गायत्री-समन्वितैः प्रणव-सम्पुटितैर् अष्टाक्षर-मन्त्र-स्थैर् अक्षरैर् अष्टोर्ध्व-पुण्ड्राणि धारयेत् । भोगार्थी अशक्तश् च ललाट-हृत्-कण्ठ-कुक्षि-भुज-द्वयेषु षट्-स्थानेषु प्रत्यक्षरं विष्णु-गायत्री-समन्वितैः प्रणव-सम्पुटितैर् विष्णु-षड्-अक्षर-मन्त्रस्थैर् अक्षरैर् षड्-ऊर्ध्व-पुण्ड्राणि धारयेत् । फलान्तरार्थी अशक्तश् च ललाट-हृद्-भुज-द्वयेषु चतुर्षु स्थानेषु प्रणवादि-नमोन्तैर् वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्ध-मन्त्रैश् चत्वार्य-ऊर्ध्व-पुण्ड्राणि धारयेत् । अत्यन्ताशक्तः "उद्धृतासी"ति मन्त्रेण प्रणवेन वा ललाटे एकम् ऊर्ध्व-पुण्ड्रं धारयेत् । अत्रायं निष्कर्षः । गुरु-लघु-विकल्पे गुरोर् एव मुख्यत्वम् । यत्र तु कर्म-विशेषाङ्गतया वा फल-विशेषम् उद्दिश्य वा न्यून-सङ्ख्या-विधानं तत्र विशेष-वचन-बलान् न्यूनतयैव तत्-परिग्रहः । अन्यत्र तु अधिक-परिग्रह एव मुख्यः । द्रव्यालाभाशक्त्यादि-दशासु गत्य्-अभावात् न्यून-परिग्रहः । अत्यन्ताकरणात् यथा-शक्ति-करणस्य नित्ये शास्त्रीयत्वात् काम्येष्वपि केषुचित् यथा-शक्त्य्-अनुष्ठाने ऽपि तत्-तत्-यत्नानुरूप-फलस्य प्रतिपादितत्वात्वाद् इति । कण्ठे तुलसी-नलिनाक्ष-मालां श्री-पवित्रञ्च च धारयेत् ।

[[20]]

०३ प्रातस् सन्ध्या-वन्दन-क्रमः ②

ततः स्वाचान्तः प्राणानायम्य प्रातस् सन्ध्या-वन्दनं सङ्कल्प्य गायत्र्या आपो ऽभिमन्त्र्य प्रणवेन प्रथमं व्याहृतिभिर् द्वितीयं गायत्र्या तृतीयं मार्जनं कृत्वा "आपोहिष्ठे"ति तिसृभिर् मार्जनं कृत्वा व्याहृतिभिस् स्वात्मानं परिषिच्य "सूर्यश्चे"त्य् आचम्य "दधिक्राव्णन्" इति 'आपोहिष्ठे'ति नवभिर् ऋग्भिर् "हिरण्य-वर्णा" इति चतसृभिः "पवमानस् सुवर्जन" इत्य् अनुवाकेन कूर्चेन च पुनर् मार्जयित्वा प्रणव-व्याहृतिभिस् स्वात्मानं परिषिञ्चेत् । एवं स्व-स्व-सूत्रोक्त-प्रकारेण कृत्वा गायत्र्या ऽभिमन्त्रितं जलम् आदित्य-मण्डलान्त-स्थिताय परमात्मने त्रिर् अर्घ्य-रूपं दत्त्वा कालाति-पत्ति-प्रायश्चित्तार्घ्यं च दत्त्वा, प्रणव-व्याहृतिभिर् आत्मानं परिषिच्य, वज्री-भूत-तज्-जल-निहत-मन्देहाख्य-रक्षा-निरसन-पापावधूननार्थं सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा "असावादित्यो ब्रह्मे"ति ध्यायन् आत्मानम् आलभ्योपविश्य मार्ग-शीर्षादि-मासेशान् केशवादीनि तत्-तन्-मन्त्रैस् तर्पयित्वा आचम्य शुचौ देशे प्राङ्-मुखस् तिष्ठन् यया-विधिं प्राणायाम-त्रयं कृत्वा प्रणव-व्याहृति-गायत्री-शिरसा ऋषि-छन्दो देवताः ध्यात्वा "आयात्स्" इति गायत्रीम् आवाह्य प्रणव-युक्ताभिर् व्याहृतिभिस् सहितां गायत्रीं शिरसा सह दश-कृत्वो जपित्वा तुरीय-पादम् अष्टोत्तर-शतम् अष्टाविंशति-वारं दश-वारं वा जपित्वा प्रणव-व्याहृति-त्रय-युक्तां गायत्रीं अष्टोत्तर-सहस्र-कृत्वः अष्टोत्तर-शत-कृत्वो ऽष्टाविंशति-कृत्वो द्वादश-कृत्वो दश-कृत्वो ऽष्ट-कृत्वो वा मन्त्रार्थानुसन्धान-पुरस् सरं जपित्वा पूर्ववत् कृत-प्राणायाम-त्रयः सन्ध्योपस्थान-सङ्कल्प-पूर्वकम् "उत्तमे शिखर"

इति मन्त्रेण गायत्रीम् अनुज्ञाप्य स्व-स्व-सूत्रोक्तैर् "मित्रस्ये"त्य् आदिभिर् मन्त्रैः आदित्य-मण्डलान्त-स्थितं भगवन्तम् उपस्थाय स-प्रदक्षिणं भगवद्-आत्मक-सन्ध्यादि-पञ्चक-नमस्कारं कृत्वा

स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः"

इत्य् अधीतं हृदयान्त-स्थितं परमात्मानम् अभिवाद्य प्रणम्य दिग्-आदि-नमस्काराणाम् अपि स्व-पूर्व-पूर्वोपदेशानुष्ठान-पारम्पर्यम् अस्ति चेत् तत्रापि भगवद्-आत्मक-ध्यान-पूर्वकं प्रणमेत् ।

[[21]]

श्रीमद्-अष्टाक्षर-मन्त्र-जपं अष्टोत्तर-शतं यथा-शक्ति वा कुर्यात् । ततो ऽथर्व-शिरसं नारायणोपनिषदा ऽऽदित्यम् उपतिष्ठेत् । यद् वा गायत्री-जपानन्तरम् "उत्तमे शिखर" इति ताम् अनुज्ञाप्य मूल-मन्त्र-जपं कुर्यात् । ततो मैत्र-तृचा नारायणोपनिषद्-भ्याम् ऋते [[?]] उपतिष्ठेत् । अर्घ्य-दान-जपोपस्थान-रूप-कर्म-त्रयस्य पृथक्त्वात् परस्पराङ्गाङ्गि-भावाभावात् मध्ये मूल-मन्त्र-जपस् सुकर एवेति साम्प्रदायिका आहुः । ततो मूल-मन्त्रेण जलं पीत्वा ऽऽचाम्य प्रोक्ष्य परिषिच्योदकाञ्जलीन् आदित्य-मण्डलान्तर्-वर्ति-भगवत्-पादारविन्दयोर् निक्षिप्य प्राणानायम्य भगवन्तं ध्यात्वा ततः आधार-शक्त्य्-आदि-पृथिव्य्-अन्तं तर्पयित्वा श्री-वैकुण्ठादि-पारिषदान् तर्पयेत् ।

०४ आधार-शक्ति-तर्पण-क्रमः②

यथा -

ओं आधार-शक्तिं तर्पयामि । प्रकृतिं तर्पयामि । सकल-जगद्-आधारं कूर्म-रूपिणं नारायणं तर्पयामि । अन्-अन्तं नाग-राजं तर्पयामि । भूमिं तर्पयामि । श्री-वैकुण्ठ-दिव्य-लोकं तर्पयामि । श्री-वैकुण्ठ-दिव्य-जन-पदं तर्पयामि । श्री-वैकुण्ठ-दिव्य-नगरं तर्पयामि । श्री-वैकुण्ठ-दिव्य-विमानं तर्पयामि । आनन्दमयं दिव्य-मण्डप-रत्नं तर्पयामि । आस्तारण-रूपिणं अन्-अन्तं नाग-राजं तर्पयामि । धर्मं तर्पयामि । ज्ञानं तर्पयामि । वैराग्यं तर्पयामि । ऐश्वर्यं तर्पयामि । अ-धर्मं तर्पयामि । अ-ज्ञानं तर्पयामि । अ-वैराग्यं तर्पयामि । अन्-ऐश्वर्यं तर्पयामि । एभिः परिच्छिन्न-तनुं पीठ-भूतं सदात्मानम् अन्-अन्तं नाग-राजं तर्पयामि । ओं ऋग्-वेदं तर्पयामि । यजुर्-वेदं तर्पयामि । साम-वेदं तर्पयामि । अथर्वण-वेदं तर्पयामि । कृत-युगं तर्पयामि । त्रेता-युगं तर्पयामि ।

[[22]]

द्वापर-युगं तर्पयामि । कलि-युगं तर्पयामि । काल-चक्रं तर्पयामि । पीठ-भूतं नाग-राजं तर्पयामि । अष्ट-दल-पद्मं तर्पयामि । सूर्य-मण्डलं तर्पयामि । सोम-मण्डलं तर्पयामि । वह्नि-मण्डलं तर्पयामि । विमलां तर्पयामि । उत्कर्षिणीं तर्पयामि । ज्ञानां तर्पयामि । क्रियां तर्पयामि । योगां तर्पयामि ।

प्रभ्वीं तर्पयामि । ईशानां तर्पयामि । अनुग्रहां तर्पयामि । जगत्-प्रकृतिं दिव्य-योग-पर्यङ्कं तर्पयामि । सहस्र-शीर्षं नाग-राजं तर्पयामि । अन्-अन्तं पाद-पीठं तर्पयामि । सर्व-परिवाराणां पद्मासनानि तर्पयामि । अन्-अन्त-गरुड-विष्वक्सेनानां स-पीठक-पद्मासनानि तर्पयामि । अस्मद्-गुरुस् तर्पयामि । परमात्मानं नारायणं तर्पयामि । श्रीं श्रियं तर्पयामि । भूं भूमिं तर्पयामि । नीं नीलां तर्पयामि । सर्वा भगवद्-दिव्य-महिषीस् तर्पयामि । किरीट-मकुटाधिपतिं तर्पयामि । किरीट-मालाम् आपीडात्मानं तर्पयामि । दक्षिण-कुण्डलं मकरात्मानं तर्पयामि । वाम-कुण्डलं मकरात्मानं तर्पयामि । वैजयन्तीं वन-मालां तर्पयामि श्रीमत्-तुलसीं तर्पयामि । श्री-वत्स-श्री-निवासं तर्पयामि । हारं सर्वाभरणाधिपतिं तर्पयामि । श्री-कौस्तुभं सर्व-रत्नाधिपतिं तर्पयामि । श्री-काञ्ची-गुणोज्ज्वलं पीताम्बरं तर्पयामि । सर्वाणि भगवद्-दिव्य-भूषणानि तर्पयामि । श्री-सुदर्शनं हेति-राजं तर्पयामि । नन्दकं खड्गाधिपतिं तर्पयामि । पद्मं तर्पयामि । पाञ्च-जन्यं शङ्खाधिपतिं तर्पयामि । शार्ङ्गं चापाधिपतिं तर्पयामि । कौमोदकीं गदाधिपां तर्पयामि । सर्वाणि भगवद्-आयुधानि तर्पयामि । सर्वा भगवत्-पादारविन्द-संवाहिनीस् तर्पयामि । अन्-अन्तं नाग-राजं तर्पयामि । सर्वान् भगवत्-परिचारकांस् तर्पयामि । भगवत्-पादुके तर्पयामि । सर्वान् भगवत्-परिच्छदांस् तर्पयामि । वैनतेयं तर्पयामि । विष्वक्सेनं तर्पयामि । गजाननं तर्पयामि ।

[[23]]

जय-सेनं तर्पयामि । हरि-वक्त्रं तर्पयामि । काल-प्रकृति-सज्जं तर्पयापि । सर्वान् भगवद्-विष्वक्सेन-परिजनांस् तर्पयामि । चण्डं द्वार-पालं तर्पयामि । प्रचण्डं द्वार-पालं तर्पयामि । भद्रं द्वार-पालं तर्पयामि । सुभद्रं द्वार-पालं तर्पयामि । जयं द्वार-पालं तर्पयामि । विजयं द्वार-पालं तर्पयामि । धातारं द्वार-पालं तर्पयामि । विधातारं द्वार-पालं तर्पयामि । सर्वान् भगवद्-द्वार-पालान् तर्पयामि । कुमुदं गणाधिपतिं स-वाहन-परिवार-प्रहरणं तर्पयामि । कुमुदाक्षं गणाधिपतिं स-वाहन-परिवार-प्रहरणं तर्पयामि । पुण्डरीकं गणाधिपतिं स-वाहन-परिवार-प्रहरणं तर्पयामि । वामनं गणाधिपतिं स-वाहन-परिवार-प्रहरणं तर्पयामि । शङ्कु-कर्ण-गणाधिपतिं स-वाहन-परिवार-प्रहरणं तर्पयामि । सर्व-नेत्रं गणाधिपतिं स-वाहन-परिवार-प्रहरणं तर्पयामि । सुमुखं गणाधिपतिं स-वाहन-परिवार-प्रहरणं तर्पयामि । सुप्रतिष्ठितं गणाधिपतिं स-वाहन-परिवार-प्रहरणं तर्पयामि । सर्वान् भगवत्-पारिषदान् तर्पयामि ।

०५ ब्रह्म-यज्ञ-क्रमः②

एवं तर्पयित्वा ऽऽचम्य ब्रह्म-यज्ञं तैत्तिरीय-श्रुत्य्-आद्य्-अनुसारेण उदित-आदित्ये यथा-विधि कुर्यात् ।

यथा - सङ्कल्प्य "विद्युद्-असी"त्य् अपः पीत्वा ऽऽचम्य प्राणानायम्य स-पवित्रौ करौ दक्षिणोत्तरौ कृत्वा "तत्-सवितुर्" इति पच्छोर्धर्चशस् ततः सर्वा व्याहृतीर् विहृताः पादादिषु अन्तेषु वा तथार्धर्चयोर् उत्तमां कृत्स्नाम् इति ब्रह्मोपदेशोक्त-क्रमेण स-प्रणवम् उच्चार्य "हरिर् ओम्" इत्य् उच्चार्य "भूर् भुवस् सुवस् सत्यं तपः श्रद्धायां जुहोमी"त्य् उक्त्वा

स्वयम्भुवे नमः । सरस्वत्यै नमः । सावित्र्यै नमः । श्रियै नमः । श्रियः पतये नमः ।
प्राणाय वाचस्पतये नमो वाचे प्राण-पत्नै ।

[[24]]

"अधीहि भो" इत्य् आदित्यम् अभिवीक्ष्य औपासन-वैश्व-देवान्ते "अधीहि भो" इति गार्हपत्यम् औपासनं (वह्नि-मात्रे) अभिमन्य गुरु-समीपे गुरुं तथोक्त्वा तस्माद् अनुज्ञां प्राप्य "यो ब्रह्माणं विदधाती"त्युक्त्वा मूल-मन्त्रेण द्वयेन च भगवन्तं नारायणं प्रणम्य वेदाचार्यभ्यो नमः "ओं वेद-व्यासाय नमः" इत्य् उच्चार्य "ओं तत् सत्" इत्य् उक्त्वा चतुरो वेदादीन् अधीत्य "नमो ब्रह्मण" इति परिधानीयान् त्रिर् उक्त्वा "वृष्टिर् असी"त्य् अप उपस्पृश्य आचम्य काण्डर्षि-देवर्षि-पितृ-तर्पणं तत्-तत्-तीर्थेनैव यथा स्व-शाखं कृत्वा ऽऽचम्य ब्रह्मार्पणं कुर्यात् । एवं प्रकारेण तर्पणाद् अर्वाग् वा प्रातर् औपासनानन्तरं वा वैश्वदेवावसाने मनुष्य-यज्ञानन्तरं वा ब्रह्म-यज्ञं कुर्यात् । अत्र स्व-शाखाध्ययनम् एव प्रथमतः कार्यम् । अधीतान्य-वेदश् चेत् तस्य पश्चाद् अध्ययनं ब्रह्म-यज्ञेन कार्यम् । प्रश्नाध्यायासमर्थो यथा-शक्ति क्रमाद् अनुवाकं वा सूक्तं वा साम-वर्गं वा ऽधीयीत । नाधीत-वेदस् तु ब्रह्म-यज्ञे गायत्रीं मूल-मन्त्रं च यथा-शक्ति जपेत् । अन्-अधीत-वेदो ऽशक्तो वा ब्रह्म-यज्ञे पुरुष-सूक्तं होतृन् वा अथर्व-शिरसा वा जपेत् । अधित-वेदो ऽन्-अधीत-वेदो ऽपि नित्य-प्रश्नानन्तरं वैकल्पिक-पुरुष-सूक्त-होतृ-अथर्व-शिरो जपानन्तरं "नमो ब्रह्मण" इति परिधानीयायाः पूर्वं नित्यं कूश्माण्डानुवाक-चतुष्टयं "अग्निर्मूर्धा दिवः ककुदि"ति छन्दस् सजं संहिता-गतानुवाकं च जपेत् । अत्र बोधायनः ।

जघनेन गार्ह-पत्यम् उपविश्य औपासनस्य वा अधीहि भो

इति गार्ह-पत्यम् उक्त्वा प्राणायामैस् त्रिर् आचम्य सावित्रीं सहस्र-कृत्वो ऽऽवर्तयेत् शत-कृत्वो ऽपरिमित-कृत्वो वा दश-वारं वेदादयश् छन्दांसि कूश्माण्डानि चाधीतेति । भुक्तस्य ब्रह्म-यज्ञे ऽन्-अधिकारः ।

[[25]]

अस्पृश्याशौच-दुष्टस्यानध्यायः । अदुष्टस्यापि अ-मेध्य-शव-शूद्रान्त्य-पतितान्तिक-देशे ऽन्-अध्यायः यथाध्यायं अध्यायः पदस्य क्रमस्य वा ऽध्यायः । अन्नाद्य-अकामो निर्भुजं ब्रूयात् । स्वर्ग-कामः प्रतृण्णम् उभय-कामः उभयम् अन्तरेणेति । ऋग्-वेदारण्यकोक्तेः । अत्र निर्भुज-शब्देन संहिता, प्रतृण्ण-शब्देन पदं उभयम् अन्तरेणेति शब्देन क्रमः उच्यते । उच्चैर् अध्येतव्यम् न तु मनसा । विद्युदाद्य्-अन्-अध्यायेष्वाप्य् अध्येतव्यम् । अनियत-प्रश्नाध्यायिनः अन्-अध्यायेषु अल्पम् एव अध्ययनं कार्यम् । संहिता-शाखा-काठकारण्यानि वैश्वदेव-मन्त्र--मन्त्र-प्रश्नौ च पठेत् । पुनश् चैवम् इति ब्रह्म-यज्ञे अध्ययन-क्रमो बोध्यः । ऋग्-वेदिनां संहिता-ब्राह्मणारण्यकानीति क्रमः । साम-वेदिनां प्रकृति-ऋग्-ग्रन्थोत्तरा-ग्रन्थ-प्रकृत्य्-ऊह-रहस्य-गत-साम-महा-ब्राह्मण-षड्-विंश-साम-विधानार्षेय-देवताध्यायोपनिषत्-संहितोपनिषद्-वंश-ब्राह्मणानीति क्रमः । सायं कालात् प्राग्-एव ब्रह्म-यज्ञः कर्तव्यः । अथावाहित-तीर्थं मन्त्रांश् च स्वात्मनि समाहृत्य तीर्थासन्न-विष्ण्व्-आयतनं गत्वा प्रदक्षिणानि प्रणामांश् च युग्मानि कृत्वा विष्वक्सेनं तत्-तत्-द्वार-पालांश् च प्रणम्यानुज्ञाप्य भगवन्-मन्दिरं प्रविश्य भगवन्तम् अष्टाङ्गेन तत्-तद्-देश-काल-शक्येन

मस्तिष्क-सम्पुट-प्रह्लाङ्ग-पञ्चाङ्ग-दण्डाङ्गादिष्व् अन्यतमेन वा प्रणम्य भगवतः पुरस्ताद् दक्षिणतो ऽवस्थाय गुरु-परम्परया परम-गुरुं भगवन्तं शरणम् उपगम्य पावन-मनो-हर-तद्-दर्शनानन्दोपबृंहित-सर्वाङ्गः प्रीति-परिहार-रूप-पाणिः स्तव्यस् तव-प्रिय-वशीकरणानि स्तोत्राणि पठित्वा भगवत्-सेवया ऽऽत्मानं कृतार्थं मन्यमानो यथा-शक्त्य् उपहार-निवेदनं पुष्पादि-प्रदानं च कृत्वा भगवद्-अनुज्ञया क्वचिन् निभृतम् उपविश्य जपादिभिर् भगवन्तम् उपासीत । भगवन्-मन्दिरे च तत्-तच्-छास्त्रोदितान् अपचारान् परिहरेत् ।

[[26]]

ततः श्रीमन् नारायणं पूर्ववत् प्रणम्य विष्वक्सेनादीन् अनुज्ञाप्य भगवन्-मन्दिरान् निर्गत्य स्व-देवाधिष्ठितं स्वाश्रमं गृहं वा गन्तुम् उद्युक्तो ऽभ्युक्षणं जलं सौवर्ण-रजत-ताम्रादि--लोह-मय--मृण्-मय--पात्रेषु दृढेष्व् आदाय संयतात्मा वाग्-यतो गृहम् आगत्य अन्येन जलेन सुप्रक्षालित-पाणि-पादः स्वाचान्तो "वास्तोष्पत" इति सूक्तं जपन् भगवन्-मन्दिरं संमृज्यानुशोध्य आवाहित-तीर्थेन गो-मयेनानुलिप्य "आनो भद्रा" इति सूक्तेन रङ्ग-वल्लीं निक्षिपेत् । ततः स्वर्णं कुशं वा ऽभ्युक्षणोद-पात्रे निक्षिप्य होम-पूर्वं याग-भूमिम् अ-शेषाणि द्रव्याणि तद्-उचित-स्थानानि च सम्प्रोक्ष्याचामेत् । एवं त्रि-सन्ध्यम् अभ्युक्षणं कुर्यात् । नाप्रोक्षिते यजेत् । न निषिद्ध-पात्रेष्व् अभ्युक्षणम् आहरेत् । (अभिगुप्तम् आहरेत् पाणिना वस्त्रेण च नाहरेत्) शूद्रः कन्यानुपेतो वा नाहरेत् । अ-व्रत--एक-वस्त्रो वा नाहरेत् । न सव्येन पाणिना प्रोक्षयेत् । ततः श्रौत-स्मार्तश्च चाग्निः यस्य स-सूत्र-विधिना पूर्वं श्रौतं होमं कृत्वा स्मार्तं होमं कुर्यात् ।

०६ औपासनानुष्ठान-प्रकारः ②

...

अत्र यद्य् अपि परमैकान्तिभिर् [दत्तं हव्यं कव्यं च निरतिशय-प्रीत्या भगवान् शिरसा प्रतिगृह्णाति, तथापि तैः परमैकान्तिभिः भगवत्-पादार]विन्दयोर् एव सर्वं समर्पणीयम् इति निष्कर्षः । एवम् उक्त-प्रकारेणाग्नि-होत्रं कृत्वौपासने ऽपि

। ओं नमो नारायणाय सूर्याय स्वाहा ।

सायम् "अग्नये स्वाहा" ।

। ओं नमो नारायणायाग्नये स्विष्ट-कृते स्वाहा ।

"प्रजा-पतये स्वाहे"ति वा हुत्वा वनस्-पति-होमादिकं शकल-होमं च कुर्यात् ।

०७ भगवद्-अभिगमन-प्रकारः ②

...

सोम-सूर्यान्तर-स्थं च गवाश्चत्वाग्नि-मध्य-गम् ।
भावयेद् भगवद्-विष्णुं गुरु-विप्र-शरीर-गम् ॥

इत्थं उक्त-प्रकारेण गवादिश्व अन्तस् स्थितं भगवन्तं भावयित्वा वेदाभ्यास-जपाध्ययन-धारण--
तद्-अर्थ-विचारण-धर्मादि-शास्त्र-वैदिक-निगम-वेदाङ्गावेक्षण-प्रभृतीनि प्रथम-काल-कर्तव्यानि
कर्माणि कृत्वा अभ्यञ्जनालेपन-वास-स्नग्-भूषणादिभिर् अलंकृतस् ताम्बूलेन मुख-शोधनं कृत्वा
मङ्गल-द्रव्य-वीक्षणं कृत्वा अन्यान्य अपि मङ्गल-कर्माण्य एव कृत्वा

०८ अभिगमन-समापन-सात्त्विक-त्यागः ②

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुरात्म्य-
भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेनाभिगमनेन कर्मणा भगवान् प्रीयतां वासुदेव

इत्थं अभिगमनं भगवते समर्पयेत् ।

इति श्रीमद्-रामानुज-सिद्धान्त-स्थापनाचार्य-शत-क्रतु-चतुर्-वेदि-श्री-निवासाचार्य-विरचिते
पञ्च-काल-क्रिया-दीपे अभिगमन-निरूपणाख्यः प्रथमः परिच्छेदः ।

[[65]]

०२ उपादानम्①

०१ उपादान-सङ्कल्पः②

अथोपादानं ख्यास्यामः । अन्हो द्वितीय-भागे सम्प्राप्ते

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुरात्म्य-
भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेनोपादानेन कर्मणा भगवन्तम् अर्चयिष्यामि

इत्य् उत्पादानं सङ्कल्प्य,

ओं भगवतो बलेन भगवतो वीर्येण भगवतस् तेजसा भगवतः कर्मणा भगवतः कर्म
करिष्यामि वासुदेवस्य

इत्य् अनुसन्धाय

०२ पूजोपकरण-द्रव्य-संपादन-प्रकारः②

कुशादि-दर्भान् समिधः पत्राणि पुष्पाणि फल-मूलान्य् ओषधीः दधि-क्षीराज्यादीनि हविर् योग्य-
तण्डुलानि गुडानि स्नानीय-द्रव्याणि वस्त्राणि स्वादु-सलिलान्य् अन्यानि पूजोपकरण-द्रव्याणि
यथा-शक्ति यथा-वस्तु याच्चया पूर्व-सम्पादितैर् अर्थैर् वा सम्पादयेत् ।

०१ दर्भ-समिदादि-सङ्ग्रहण-विधिः③

यथा-शुचिर् भूत्वा पूर्वोत्तराभिमुखो "हुं फङ्" इति मन्त्रेण कुशादि-दर्भान् स्पृष्ट्वा

विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठि-निसर्ग-ज ।
नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्ति-करो भव ॥

इति मन्त्रेण देवार्थान् दर्भान् प्राङ्-मुख-उपवीती पित्रर्थान् दर्भान् दक्षिणा-मुखः प्राचीनावीत्य्
आहृत्य पृथक् पृथक् एव निक्षिपेत् । एवम् अहन्त्य् अहन्त्य् आहृता दर्भाः प्रशस्ता भवन्ति । अ-
शक्त्या यद्य् एकदैव दर्भ-ग्रहणं कार्यं तर्हि माघे नभो-मास्य् अमावास्यायां दर्भान् आहरेत् । तदा
ऽऽनीता दर्भा वत्सरान्त-कर्मसु नियोज्या भवन्ति । कुश-विश्वामित्र-काशानाम् अलाभे अश्व-बाल-
यव-व्रीहि-श्यामाक-नीवार-बल्लज-पुण्डरीक-दूर्वादिषु ये लब्धाः तैः कर्म कुर्यात् ।

ततो ऽस्त्र-मन्त्रेण समिध आहरेत् ।

०२ पुष्प-तुलस्यौ③

ततः स्वयम् एव स्व-कृति-सिद्धानि स्वारामजानि पुष्पाणि पात्रेणाहरेत् । एतच् च पुष्पाहरणं मध्याह्न-स्नानात् पर्वम् एव कार्यम् । ततस् तुलसीम् आहरेत् । तन्-मन्त्राः ।

[[66]]

पुष्प-तुलस्य्-आहरण-प्रकारः ④

तुलस्य्-अमृत-सम्भूते सर्वदा केशव-प्रिये ।
केशवार्थं लुनामि त्वां वरदाभव शोभने ॥
मोक्षैक-हेतोर् धरणि-प्रसूते विष्णोः समस्तस्य गुरोः प्रिये ते ।
आराधनार्थं पुरुषोत्तमस्य लुनामि पन्त्रं तुलसि क्षमस्व ॥
प्रसीद मम देवेशि प्रसिद हरि-वल्लभे ।
क्षीरोद-मथनोद्भूते तुलसि त्वं प्रसिद मे ॥

इति मन्त्रैः स्वारामजानि तुलसी-पत्राणि पात्रे स्वयम् एवाहरेत् । अन्यान्य् अपि पत्राङ्कुर-मूल-फलादीन्य् अस्त्र-मन्त्रेणाहरेत् ।

त्याज्योपादेय-पुष्प-विवेकः ④

पुष्पाङ्कुर-फल-पत्र-मूल-धूप-वस्त्राभरणेषु शास्त्रेण वर्ज्यावर्ज्य-प्रशस्त-विभाग-पुरस्-सरम् आहरेत् । कर-वीरौ पद्मौ केतकी-जाति-मल्लिकोत्पल-चम्पक-कुटज-वकुल-तुलसी-तमाल-नव-मालिका-मरुवक-पलाश-पुन्नाग-श्वेत-कुमुद-वन-माल्लिका-कर्णिकारण्य-अशोक-द्वय-नन्द्या-वर्त-द्वय-पुष्पाणि ग्राह्याणि । अर्क-पुष्पेण विष्णुं नार्चयेत् । कर-वीर-पुष्पैर् गृहार्चं न पूजयेत् । विहितेष्व् अपि छिद्र-मुकुलं जीर्णं भग्न-पत्रं स्वयं पतितं जन्तु-दूषितम् ऊर्ण-नाभेन वासितं निर्मन्थ-पारक्यं देवालयोद्भूतम् अ-शुभ-देशोत्थम् उग्र-गन्धं चतुष्-पथ-शिवालय-शमशानावनि-मध्य-जं अशनि-पात-क्षतम् अकर्मण्यं केशापविद्धं पाद-लङ्घितं म्लानं पर्युषितं भुक्त-शेषम् आध्रातम् अस्पृश्य-स्पृष्टं हस्तानीतम् पटा-नीतम् अर्क-पत्र-स्थितं पराहतं क्रय-क्रीतम् अ-वैष्णव-शूद्राहतं च पुष्पं भगवद्-अर्चने वर्जयेत् ।

[[67]]

स्वयं परतो वा ऽन्याराम-सम्भूतानां पुष्प-फलादीनां ग्रहणे तस्करत्वं स्यात् । भगवद्-अर्चने तुलसी-पुष्पं मुख्यम् । तद्-अलाभे तु पत्रम् । तद्-अलाभे तच्-छाखा । तद्-अलाभे तन्-मृत्तिकेति बोध्यम् । सर्वेषाम् अपि पुष्पाणाम् उत्पलं सहस्र-गुणं तस्मात् पद्मं तस्माच् छत-पत्रं तस्मात् सहस्र-पत्रं तस्मात् पुण्डरीकं तस्मात् तुलसी ततो बक-पुष्पं ततस् सौवर्णं ततो ऽधिकं नासीद् इति ज्ञेयम् । परिव्राजकैः पुष्पादिकं स्वयं न कर्तव्यम् । अन्याहृतैः पुष्पादिभिः अद्भिर् एव वा पूजा कार्या ।

०३ पात्रासन-ध्वजादि③

पात्र-आसन-ध्वज-गन्ध-द्रव्य-भूषणादीनाम् उपकरणानां च सम्भरण-प्रकारः॥

भगवद्-आराधनोपकरण-सम्पादनार्थ-द्रव्यार्जन-विधिः धर्म-शास्त्रे द्रष्टव्यः । देव-दारु-कृतं चन्दनागरु-मिश्रितं सर्ज-रसं प्राण्य्-अङ्ग-वर्जितं गव्येन सर्पिषा कृतं धूपं प्रशस्तं भवति । एवं पूजोपकरणानि सम्पाद्य याग-गृहे निदध्यात् । दीपिका-स्तम्भान् अर्घ्यादि-पञ्च-पात्राण्य् अर्घ्यादि-प्रतिग्रह-पात्राणि उद्धरणीं स्नान-वेदिकां नैवेद्य-पात्राणि पानीय-पात्रं भगवत्-पादुके कङ्कतिकाम् अञ्जन-क्षेत्र-पात्रं अञ्जन-शलाका-दर्पणं सहस्र-रन्ध्र-युक्त-स्नानार्थ-पात्रं धूप-पात्रं दीप-पात्रं घण्टां नीराजन-पात्रं बलि-पात्रं मुक्तातपत्रम् अन्यान्य् आतपत्राणि व्यजनानि ताल-वृन्तानि चामराणि पूजा-द्रव्याणि निक्षेप-पात्रं स्नानासनालङ्कारासन-यात्रासन-भोजनासन-पर्यङ्कासनानि

रथ-गज-तुरगान्दोलिकादि-वाहनानि
ध्वजान् नानाविधानि वीणादि-वाद्यानि
जल-भाजनं भगवद्-योग्यानि वस्त्राणि उपवीतं
कस्तूरिका-मृग-मद-कुङ्कमादि-गन्ध-द्रव्याणि कर्पूर-पूग-नाग-वल्ल्यादीनि रजन्य्-आमलक-
तैलादि-द्रव्याणि
स्नानार्थानि नानाविधानि भूषणानि
शालि-तण्डुलादि-मात्रा-द्रव्याणि नीराजन-द्रव्याणि

[[68]]

लीला-यष्टिं शङ्ख-चक्राद्य्-आयुधानि भगवन्-निवेदन-योग्यानि पदार्थान्य् अन्यानि
चाभीप्सितानि यथार्हम् उपादद्यात् ।

सम्पादित-समाराधनोपकरणश् चेत् सच्-छास्त्र-परिशीलनेन वा मूल-मन्त्रानुसन्धानेन वा काल-
क्षेपं कुर्यात् ।

०३ सात्त्विक-त्यागः②

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुरात्म्य-
भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन कर्मणा भगवान् प्रीयतां वासुदेव

इत्य् उपादानं भगवते समर्पयेत् ॥

इति श्रीमद्-रामानुज-सिद्धान्त-स्थापनाचार्य-शत-क्रतु-चतुर्-वेदि-नावल्पाकं श्री-निवासाचार्य-
कृतिषु पञ्च-काल-क्रिया-दीपे उपादान-निरूपणाख्यो द्वितीयः परिच्छेदः

[[69]]

०३ इज्या①

अथेज्या॥ 4

०१ सङ्कल्पादि②

अथेदानीम् अहो-रात्र-कृत्येषु प्रधान-भूताम् इज्यां व्याख्यास्यामः । अह्णस् तृतीयांशे मध्याह्न-समये प्राप्ते

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुरात्म्य-
भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन इज्यया भगवत्-कर्मणा भगवन्तं वासुदेवम्
अर्चयिष्यामि

इतीज्यां सङ्कल्प्य,

ओं भगवतो बलेन भगवतो वीर्येण भगवतस् तेजसा भगवतः कर्मणा भगवन्तम्
अर्चयिष्यामि वासुदेवस्य

इत्य् अनुसन्धाय

भगवान् एव स्व-शेष-भूतेन मया स्वीयैर् एव कल्याणतमैर् औपचारिक-
सांस्पर्शिकाभ्यवहारिकैर् भोगैर् अखिल-परिजन-परिच्छदान्वितं स्वात्मानं प्रीतं
कारयितुम् उपक्रमते

इत्य् अनुसन्धाय

माध्याह्निक-स्नान-विधिः③

स्नानार्थं तीर्थं गत्वा शुचौ देशे भूमिं प्रक्षाल्य अवतारं च शोधयित्वा स्नानं सङ्कल्प्य दूर्वा मृत्तिकां गोमयं च निधाय पाणि-पादौ च प्रक्षाल्याचम्य अम्भांसि ताम्रादि-पात्रेषूद्धृत्य जलाद् बहिस् तीरे स्थित्वा आद्रामलक-मात्रया मृदा तोयेन च स्वकं देहं संशोधयेत् । अयम् अनुष्ठान-क्रमः । षड्भिः पादौ, चतसृभिर् जङ्घे, तिसृभिर् नाभि-कटी[[?]] एकया शिर आलिप्य प्रक्षाल्य "सहस्र-परमे"ति दूर्वा-स्नानं कृत्वा "अश्वक्रान्त" इति मृत्तिका-समीपं गत्वा "उद्धृतासी"ति मृदम् उद्धृत्य "मृत्तिके हनमे पापम्" इति गात्रेषु मृत्तिकाम् आलिप्य प्रक्षाल्याचम्य मूल-मन्त्रेण मृदम् आदाय द्विधा कृत्य[[?]] शोधित-तीरे एकं भागं निधायान्येनाधिकेन भागेन देह-प्रक्षालनं कृत्वा निमज्ज्याचम्य प्राणायाम-त्रयम् आसीनो भगवन्तं ध्यायन् कृत्वान्यं मृद्-भागम् आदाय वाम-पाणि-तले त्रिधा कृत्य[[?]] मूल-मन्त्रेण पृथक् पृथक् संप्रोक्ष्याभिमन्त्र्य एकेन दिग्-बन्धनम् अस्त्र-मन्त्रेण कुर्यात् ।

[[70]]

अन्येन तीर्थस्य पीठं "ओं नमो भगवद्-विष्णु-तीर्थाये"ति जल-मध्ये निधायान्यं मृद्-भागम् आदायादित्य-मण्डलान्तर्-वर्ति-पुरुष-तेजसा शिरस उपरि द्वादशाङ्गुल्य-अन्तस्-स्थित-शत-दल-पद्म-स्थं भगवत्-तेजसा वा सन्तर्प्य केशवद्य-ऊर्ध्व-पुण्ड्र-धारणं कृत्वा शिष्टेन गात्रानुलेपनं कुर्यात् । ततः

समस्त-जगद्-आधार-शङ्ख-चक्र-गदा-धर

इत्य् आदि "हिरण्य-वर्णा" इति मार्जानान्तं प्रातः स्नानवत् कृत्वा "पवमानस् सुवर्जन" इत्य् अनुवाकेन मार्जयित्वा "इदम् आप" इति ऋग्-यजुर्भ्यां मार्जयित्वा अञ्जलाव् अप आदाय द्रुपदा-मन्त्रं त्रिः पठित्वा मूर्ध्नि विन्यस्य अन्तर्-जले निमग्नो द्रुपदा-मन्त्रं त्रिर् आवर्तयेत् । ततो ऽघमर्षण-सूक्तं जपं कुर्वन् निमज्ज्योन्मज्ज्य मूल-मन्त्रेण भगवन्तम् आवाहनादि-षोडशोपचारैर् अभ्यर्च्य "तद् विष्णोर्" इति मन्त्रेण विष्णु-गायत्र्या च श्रीमन्-नारायणं स्मरन् पुनः पुनर् निमज्ज्योन्मज्ज्य जले निमग्नः प्रणवान्विता-व्याहृतीर् गायत्रीं च त्रिर्-आवर्त्य प्रणवं यथा-शक्ति जपित्वोन्मज्ज्य जले निमग्नः पुरुष-सूक्त-तरत्-स-मन्दी-चतुर्-ऋचं शुद्धाशुद्धीय-त्रयं "आयं गौर्" इति तृचं "कया न श्वित" इति तृचं "पवस्व सोम मन्दयन्" इति वर्ग-त्रयं रथान्तर-बृहद्-वाम-देव्य-रौरव-यौधाजय-महा-नाम्नि-पुरुष-व्रत-पञ्चक-विष्णु-सूक्तानि जपित्वोन्मज्ज्य "हंसश् शुचिषद्" इति त्रिर्-जपन् सूर्यं प्रेक्ष्य मूल-मन्त्रेण जलम् अभिमन्योदकाञ्चलिम् आदायेत्य् आदि-प्रातस् स्नानवत् कृत्वा द्विर् आचम्य प्राणानायम्य माध्याह्निक-सन्ध्या-वन्दनं सङ्कल्प्य "आपोहिष्ठे"ति मार्जयित्वा परिषिच्य "आपः पुनात्व" इत्य् अपः पीत्वा ऽऽचम्य सुरभि-मत्या "आपोहिष्ठे"ति च मार्जयित्वा परिषिच्य गायत्र्या ऽर्घ्यं दत्त्वा प्रायश्चित्तार्घ्यं च दत्त्वा परिषिच्य मासे शतर्ष-पणं देवर्षि-पितृ-तर्पणं च कृत्वा धृत-वस्त्रोत्तरीयो धृतोर्ध्व-पुण्ड्रस् तुलसी-नलिनाक्ष-माला-श्री-पवित्र-धारणं कृत्वा गायत्री-जपं गायत्र्य-उपस्थानं "असत्येन"ति नारायणोपनिषदा च आदित्योपस्थानं च कृत्वा यथा-शक्ति मूल-मन्त्रं जपित्वा आधार-शक्त्य-आदि-तर्पणं कृत्वा आवाहित-तीर्थं मन्त्रांश् चात्मनि समाहृत्य "कनिक्रदद्" इति शाकुन-सूक्तं जपन् भगवत्-कलशम् आदाय "इमं मे गङ्गे" इति ऋचा जलम् अभिमन्य "आपो अस्मान्" इति तृचा कलशं क्षालयित्वा "समुद्र-ज्येष्ठा" इति सूक्तेन जलं गृहीत्वा "युवं वस्त्राणी"ति मन्त्रेण वस्त्रेणाच्छाद्य "प्रसम्राजम्" इति सूक्तेन गृहं प्रविश्य सुप्रक्षालित-पाणि-पादः स्वाचान्तो याग-भूमि-समीपं गत्वा वायु-मन्त्रेण ताल-त्रयं कुर्वन् कवाटम् उद्घाट्य देव-व्रतेन साम्ना दक्षिण-पद-विन्यास-पूर्वकम् अन्तः प्रविशेत् ।

[[71]]

भगवत्-सन्निधौ शरणागति-प्रकारः ③

ततः शुचौ देशे मनो-हरे निश्शब्दे "ओं भूः भूम्यै नम" इति भुवं सङ्गृह्य "ओं यं वायवे नम" इति वायु-बीजं

मूल-मन्त्र-शिरस्कं दक्षिण-हस्ते न्यस्य शोषयामि

इति तां विशोष्य "ओं रं अग्नये नमः" इति वह्नि-बीजं मूल-मन्त्र-शिरस्कं दक्षिण-हस्ते न्यस्य

चन्द्र-मण्डलान्तर-गत-श्वेत-पद्म-स्थितामृतेन प्लावयामि

इति सम्प्लाव्यास्त्र-मन्त्रेण ताल-त्रयेन भगवत्-प्रबोधनं कृत्वा वायु-मन्त्रेण दिव्य-कवाटम् अपनीय गुरु-परम्परया परम-गुरुं भगवन्तं शरणम् उपगम्य पुण्डरीकाक्ष-विद्यां मूल-मन्त्रं द्वयं च अनुसन्दधन्तम् एव प्राप्यत्वेन प्रापकत्वेन अन्-इष्ट-निवारकत्वेन यथावस्थित-स्व-रूप-रूप-गुण-विभूति-लीलोपकरण-विस्तारम् अनुसन्धाय "अखिल-हेय-प्रत्यनीके"त्य् आदि

अन्-अन्य-शरणस् त्वत्-पादारविन्द-युगलं शरणम् अहं प्रपद्ये

इत्य् अन्तेन वाक्येन न्यास-दशकेन च भगवन्तं शरणम् उपगम्य तत्-प्रसादोपबृंहित-मनो-वृत्तिस्तम् एव भगवन्तं सर्वेश्वरेश्वरम् आत्मनः स्वामित्वेनानुसन्धाय अत्यर्थ-प्रियाविरत-विशदतम-प्रत्यक्ष-रूपानुधानेन ध्यायन् आसीत् । ततस् तद्-अनुभव-जनितातिमात्र-प्रीति-कारित-परिपूर्ण-कैङ्कर्य-रूप-पूजाम् आरभत । अथ देवस्य दक्षिण-पार्श्वे स्वस्यासन-मन्त्रेण निधाय तेन प्रोक्ष्य तत् उपविश्य स्वस्तिकासनं पद्मासनं वा बद्ध्वा तुर्य-घोषे प्रवर्तिते तिरस्करिण्या-द्वारे निच्छिद्रादिते सति

[72]

इज्यार्थ-विशेष-सङ्कल्पः ③

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुरात्म्य-भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन इज्यया भगवत्-कर्मणा भगवन्तम् अर्चयिष्यामि

ओं भगवतो बलेन भगवतो वीर्येण भगवतस् तेजसा भगवतः कर्मणा भगवन्तम् अर्चयिष्यामि वासुदेवस्य

इत्य् अनुसन्धाय

स्व-नियाम्य स्व-रूप-स्थिति-प्रवृत्ति-स्व-शेषतैक-रसेनानेनात्मना स्वकीयैश् च देहेन्द्रियान्तः करणैः स्वकीय-कल्याणतम-द्रव्यमयान् औपचारिक-सांस्पर्शिकाभ्यवहारिकादि-समस्त-भोगान् अतिप्रभूतान् अतिप्रियतमान् अतिसमग्रान् अत्यन्त-भक्ति-कृतान् अखिल-परिजन-परिच्छदान्विताय स्वस्मै स्व-प्रीतये स्वयम् एव प्रतिपादयितुम् उपक्रमत

इत्य् अनुसन्धायस्त्र-मन्त्रेण दिग्-बन्धनं कृत्वा तेजो-मन्त्रेण प्राकारवत्-स्थितं वह्निं ध्यात्वा सुदर्शन-मन्त्रेण चक्र-मुद्रां विन्यस्य आत्मानं गुप्तं ध्यात्वा प्राणायाम-त्रयं कुर्यात् ।

०२ भूत-शुद्ध्यादि②

प्राणायाम-विधि:③

प्रथमे प्राणायामे नाभि-देशे भगवन्तं **संस्थाप्य**

दक्षिण-नासया वायुं तूष्णीं **विसृज्य**

मूल-मन्त्रं चतुर्-दश-वारं जपन्, वाम-नासया वायुम् **आपूर्य**

मूल-मन्त्रम् अष्टा-विंशति-वारं जपन्, कुम्भकं **कृत्वा**,

मूल-मन्त्रं सप्त-वारं जपन् दक्षिण-नासया वायुं रेचयेत् ।

रेचक-समये नाभि-देश-स्थं भगवन्तं सुषुम्नया हृदयम् **आगमय्य**

जीवस्य कल्मषं गृहीत्वा वायुना सह दक्षिण-नासया **निर्गमय्य** नित्यं द्वादशाङ्गुल्य-अन्तस्-स्थित-
शत-दल-पद्मे स्थित्वा

जीवस्य कल्मषं **क्षिपन्तं ध्यायेत्** ।

द्वितीये प्राणायामे दक्षिण-नासया वायुना सह भगवन्तं हृदये स्थापयित्वा

कुम्भकं कृत्वा

वाम-नासया वायुं विसृजेत् ।

तृतीये प्राणायामे वाम-नासया वायुम् आपूर्य

कुम्भकं कृत्वा

दक्षिण-नासया रेचक-समये वायुना भगवन्तं निर्गमय्य शत-दल-पद्मे स्थापयेत् ।

अत्र प्राणायाम-त्रये ऽपि

मूल-मन्त्रस्य कुम्भके ऽष्टा-विंशति-वारं जपः, ।

पूरके तद्-अर्थं,

रेचके चतुर्थांशम् इत्य् एवं प्राणायाम-त्रयं कृत्वा

संहार-न्यासः③

विस्तरेण भूत-शुद्धि-प्रकारः॥

पञ्चोपनिषन्-न्यासः④

स्व-देहे पञ्चोपनिषन्-मन्त्रान् पादादि-मूर्ध-पर्यन्तं संहार-क्रमेण न्यसेत् । तत्-प्रकारश् चेत्थम् ।

| ओं लां नमः पराय सर्वात्मने नारायणाय

इति पादयोः

| ओं वां नमः पराय निवृत्य-आत्मने अनिरुद्धाय

इति गुह्ये

| ओं रां नमः पराय विश्वात्मने प्रद्युम्नाय

इति हृदये

| ओं यां नमः पराय पुरुषात्मने सङ्कर्षणाय

इति नासाग्रे

| ओं षौं नमः पराय परमेष्ठ्य-आत्मने वासुदेवाय

इति शिरसि

तत्त्व-न्यास-प्रकारः ④

ततस् संहार-क्रमेण तत्त्व-न्यासः ।

| ओं कं पृथिव्यै नमः
ओं चं गन्ध-तन्-मात्रात्मने नमः

इति पादयोः

| ओं खं अद्भ्यो नमः
ओं जं रस-तन्-मात्रात्मने नमः

इति गुह्ये

| ओं गं तेजसे नमः
ओं जं रूप-तन्-मात्रात्मने नमः

इति हृदये

| ओं घं वायवे नमः
ओं झं स्पर्श-तन्-मात्रात्मने नमः

इति मुखे

ओं ङं आकाशात्मने नमः
ओं जं शब्द-तन्-मात्रात्मने नमः

इति शिरसि

टं पायवे नमः
ठम् उपस्थाय नमः
डं पादाभ्यां नमः
ढं पाणिभ्यां नमः
णं वाचे नमः

तं घ्राणाय नमः
थं जिह्वायै नमः ।
दं चक्षुर्भ्यां नमः ।
धं त्वचे नमः ।
नं श्रोत्राभ्यां नमः

इति तत्-तद्-इन्द्रिय-स्थानेषु हृदयस्याधोभागम् आरभ्योर्ध्व-क्रमेण ।

पं मनसे नमः
फम् अहङ्काराय नमः
बं बुद्धयै नमः
भं प्रकृत्यै नमः

इति ललाटस्याधोभागम् आरभ्योर्ध्व-क्रमेण ।
"मं जीवाय नमः" इति एवं तत्त्व-न्यासं कृत्वा

शोषणादि③

दक्षिणेन पाणिना "ओं यं" इत्य् अष्ट-कृत्व उच्चरन् "वायवे नमः" इति मूल-मन्त्र-शिरस्कं नाभि-देशे विन्यस्य वेद्याकारं वायु-बीजं ध्यायन् मन्त्रोद्भूत-चण्ड-वाय्व्-आप्यायित-नाभि-देश-स्थ-वायुना धूम्रेण स-कल्मषं शरीरम् अन्तर् बहिश् च सर्व-तत्त्वमयं तत्त्व-क्रमेण शोषयामि इत्य् अनुसन्धाय दक्षिण-नासया वायुं विसृजेत् ।

[[74]]

हृद्-देशे "रम्" इत्य् अष्ट-वारं जपन् "अग्नये नमः" इति मूल-मन्त्र-शिरस्कं विन्यस्य त्रि-कोणं रक्त-वर्णम् अग्नि-बीजं ध्यायन्

मन्त्रोद्धृत-चक्राग्नि-ज्वालोपबृंहित-जाठाराग्निना तत्-तत्-समष्टि-प्रलीन-सर्व-तत्त्व-
सर्व-किल्बिष-सर्वाज्ञान-तद्-वासना-सहितं शरीरं दाहयामि

इत्य् अनुसन्धाय वाम-नासया वायुं विसृज्य दक्षिण-नासया "ओं रम्" इति षोडश-वारं जपन्
वायुम् आपूर्य द्वा-त्रिंशद्-वारं जपन् कुम्भकं कृत्वा ऽष्ट-वारं जपन् वाम-नासया वायुं रेचयेत् ।

कण्ठ-देशे "लम्" इत् अष्ट-वारं जपन् "महेन्द्राय नमः" इति मूल-मन्त्र-शिरस्कं माहेन्द्रं बीजं(=??)
विन्यस्य

पीताभं चतुर्-अश्रम् उत्थितम् अग्नि-स्पर्शनेन सह स्तम्भयामि

इत्य् अनुसन्धाय वाम-नासया वायुं विसृज्य
दक्षिण-नासया "ओं लम्" इति षोडश-वारं जपन् वायुम् आपूर्य
द्वा-त्रिंशद्-वारं जपन् कुम्भकं कृत्वा
ऽष्ट-वारं जपन् वाम-नासया वायुं रेचयेत् ।

देहे ज्वालां भगवति लीलां ध्यात्वा
संहार-क्रमेण पृथिव्य्-आदीनि तत्त्वानि संहृत्य
परमात्मनि स्थितं जीवं ध्यायेत् । यथा,

घ्राणोपस्थेन्द्रिय-युतां पीताभां चतुर्-अश्रां पञ्च-गुणितां पृथिवीं गन्ध-तन्-मात्रे
संहरामि । रसना-पाय्व्-इन्द्रिय-युता अर्ध-चन्द्राकृतीः श्वेताश् चतुर् गुणा अपो गन्ध-
तन्-मात्रं च रस-तन्-मात्रे संहरामि । चक्षुः पादेन्द्रिय-युतं त्र्य्-अश्रं पाटलं त्रि-गुणं
तेजो रस-तन्-मात्रं च रूप-तन्-मात्रे संहरामि । त्वक्-पाणीन्द्रिय-युतं वृत्तं धूम्रं द्वि-
गुणं वायुं रूप-तन्-मात्रं च स्पर्श-तन्-मात्रे संहरामि । श्रोत्र-वाग्-इन्द्रिय-युतं
नीलोत्पल-दल-प्रभं शब्द-गुणम् आकाशं स्पर्श-तन्-मात्रं च शब्द-तन्-मात्रे संहरामि
। शब्द-तन्-मात्रं मनसि संहरामि । मनो ऽहङ्कारे संहरामि । अहङ्कारं बुद्धि-तत्त्वे
संहरामि । बुद्धिं प्रकृतौ संहरामि । प्रकृतिं जीवे संहरामि । जीवं साधन-विवशं
सुसूक्ष्मं भास्वराभं नाभि-चक्रे ऽवस्थितं सुषुम्नया पद्म-पत्र-सुसूक्ष्मया नाडिकया
कुम्भकेन वायुना देहे उपर्य् आरोहयामि ।

[[75]]

भगवत्-प्राप्त्यादि३

ततो ब्रह्म-रन्ध्रं भित्वा
देहाद् बहिर् निर्गतं
भास्करस्य मण्डलं प्रविश्य
मण्डलाद् बहिर् निर्गतं

शरीरं जीवं परस्मिन् ब्रह्मणि स्थितं ध्यात्वा
पादाग्रे "यं वायवे नम" इति वायु-बीजं विन्यस्य

| वायुना पादादि-मूर्ध-पर्यन्तं देहं विशोषयामि

इति ध्यात्वा पादाग्रे "रं पावकाय नम" इति वह्नि-बीजं विन्यस्य

| वह्नि-ज्वालाया पादादि-मूर्ध-पर्यन्तं देहं दाहयामि

इति ध्यात्वा

भगवतो विनिस्सृत-वायुना भस्मनि राजस-तामसांशाव् अपोह्य
"ह्रौं ह्रौं ह्रूं ह्रौं ह्रौं वं" इत्य् अष्ट-वारं जपन्
"अमृताय नम" इति मूल-मन्त्र-शिरस्कं निवृत्ति-कला-बीजं (=ह्राम्) प्रतिष्ठा-कला-बीजं शान्ति-
कला-बीजं शान्त्य्-अतीत-कला-बीजं अमृत-कला-बीजं च मूर्ध्नि विन्यस्य स्फटिकाकाराणि
वृत्तानीमानि बीजानि ध्यायन्

| भगवद्-वाम-पादाङ्गुष्ठ-नख-शीतांशु-मण्डलात् गलद्-दिव्यामृत-धारया ऽऽत्मानम्
अभिषेचयामि

इति अनुसन्धाय

दक्षिण-नासया वायुं विसृज्य

वाम-नासया "ओं वम्" इति षोडश-वारं जपन्

वायुम् आपूर्य द्वा-त्रिंशद्-वारं जपन् कुम्भकं कृत्वा ऽष्ट-वारं जपन् दक्षिण-नासया वायुं रेचयेत् ।

पद्मे स्थापनम्③

ततो

| भगवद्-वाम-पादाङ्गुष्ठ-नख-शीतांशु-मण्डलात् गलद्-दिव्यामृत-धारया तत्-
सात्त्विकांशं भस्म प्लावयामि

इत्य् अनुसन्दधन्

तद्-भस्म सम्प्लाव्य

अमृतमय-तटाकं ध्यात्वा

"तत्र आधार-शक्त्यै नम" इत्य् आधार-शक्तिं ध्यात्वा

"पद्माय नम" इति तन्-मध्ये हेममयं पद्मं ध्यात्वा

तन्-मध्ये पिण्डी-भूतम् अमृतं ध्यात्वा

तस्मिन् पिण्डी-भूते ऽमृते भगवति स्थितं जीवं भगवत्-वाम-पादाङ्गुष्ठाद् आदाय

सात्त्विकांशं भस्मयितुं तं जीवं प्रवेशयामि

इति प्रवेश्य

सृष्टि-न्यासः③

तत्त्व-न्यासः④

तस्मात् पिण्डी-भूताद् अमृताद् उत्पन्नं जीवं ध्यायामि, जीवात् प्रकृतिम् उत्पन्नां ध्यायामि, प्रकृतेर् बुद्धिम् उत्पन्नां ध्यायामि, बुद्धेर् अहङ्कृतिम् उत्पन्नां ध्यायामि, अहङ्कृतेश् च मन उत्पन्नं ध्यायामि, मनसश् शब्द-तन्-मात्राम् उत्पन्नां ध्यायामि, शब्द-तन्-मात्रायाः श्रोत्र-वाग्-इन्द्रिय-युतं शब्द-गुणं आकाशम् उत्पन्नं स्पर्श-तन्-मात्रां चोत्पन्नां ध्यायामि,

[[76]]

स्पर्श-तन्-मात्रायाः त्वक्-पाणीन्द्रिय-युतं शब्द-स्पर्श-गुणकं वायुम् उत्पन्नं रूप-तन्-मात्राश् चोत्पन्नां ध्यायामि, रूप-तन्-मात्रायाः चक्षुः पादेन्द्रिय-युतं शब्द-स्पर्श-रूप-गुणकं तेज उत्पन्नं रस-तन्-मात्रां चोत्पन्नां ध्यायामि । रस-तन्-मात्रायाः रसना-पाय्-इन्द्रिय-युताः शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गुणाः अप उत्पन्ना गन्ध-तन्-मात्रां चोत्पन्नां ध्यायामि । गन्ध-तन्-मात्रायाः घ्राणोपस्थेन्द्रिय-युतां शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-गुणां पृथिवीम् उत्पन्नां ध्यायामि । एवं सावयवे देहे स्वात्मानं प्रविष्टं ध्यायामि । शरीर-विशिष्टम् आत्मानं भगवद्-दक्षिण-पादाङ्गुष्ठे प्रवेशयामि

इति मूल-मन्त्रम् उच्चरन् तत्र प्रवेश्य

प्राणायामं कुर्वन् भगवत्-प्रसादेन भगवत्-किङ्करता-योग्यताम् आपाद्य

तस्माद् आदाय

तद्-वाम-पादाङ्गुष्ठाद् अधस्तान् मूल-मन्त्रेणात्मानं विन्यस्य

देव-वाम-पादाङ्गुष्ठ-नख-शीतांशु मण्डलात् गलद्-दिव्यामृत-धारयात्मानम् अभिषेचयामि

इत्य् अभिषिच्य

भगवत्-प्रसादेन तद्-अमृतमयं शरीरं सर्व-कैङ्कर्यैक-मनो-हरं सर्व-कैङ्कर्यैक-योग्यं ध्यात्वा तस्मिन् शरीरे तत्त्व-दृष्टि-न्यासं कुर्यात् ।

शिरो मध्ये पुरः प्रभृति चतुर्-दिक्षु च

"क्षं सत्याय नमः"
"हं वासुदेवाय नमः"
"सं सङ्कर्षणाय नमः"
"षं प्रद्युम्नाय नमः"
"शम् अनिरुद्धाय नमः" ।

हृदये ऊर्ध्वम् आरभ्याधः क्रमेण

वं राकायै नमः लं मायायै नमः रं विद्यायै नमः यं क्रियायै नमः ।

ललाटोर्ध्व-भागम् आरभ्य

मं देवेभ्यो नमः मं जीवेभ्यो नमः मं जीवाय नमः भं प्रकृत्यै नमः ।

हृदयोर्ध्व-देशम् आरभ्य

बं बुद्ध्यै नमः फम् अहङ्काराय नमः पं मनसे नमः

इति विन्यस्य

नं श्रोत्राभ्यां नमः धं त्वचे नमः दं चक्षुर्भ्यां नमः थं जिह्वायै नमः तं घ्राणाभ्यां नमः णं
वाचे नमः ढं पाणिभ्यां नमः डं पादाभ्यां नमः ठं उपस्थाय नमः टं पायवे नमः

इति तत्-तद्-इन्द्रियेषु ।

भं शब्द-तन्-मात्रात्मने नमः डम् आकाशाय नमः

शिरसि ।

झं स्पर्श-तन्-मात्रात्मने नमः घं वायवे नमः

मुखे ।

[[77]]

जं रूप-तन्-मात्रात्मने नमः गं तेजसे नमः

हृदये

छं रस-तन्-मात्रात्मने नमः खम् अद्भ्यो नमः

गुह्ये

चं गन्ध-तन्-मात्रात्मने नमः कं पृथिव्यै नमः

पादयोः । ततो मूर्धादि-पाद-पर्यन्तं पञ्चोपनिषन्-मन्त्रान् सृष्टि-क्रमेण विन्यसेत् ।

ओं षौ नमः पराय परमेष्ठ्य्-आत्मने वासुदेवाय

शिरसि ।

पञ्चोपनिषन्-न्यासः ④

ओं यां नमः पराय पुरुषात्मने सङ्कर्षणाय

नासाग्रे

ओं रां नमः पराय विश्वात्मने प्रद्युम्नाय

हृदये

ओं वां नमः पराय निवृत्य्-आत्मने ऽनिरुद्धाय

गुह्ये

ओं लां नमः पराय सर्वात्मने नारायणाय

पादयोः ।

एवं न्यासं कुर्वन् तत्-तच्-छक्तिमयम् उद्भूतं देवं ध्यायेत् ।⁽⁵⁾

प्राण-प्रतिष्ठा-प्रकारः ③

ततः पूर्ववच् छिरसि मूल-मन्त्र-शिरस्कं अमृत-बीजं विन्यस्य
प्राणायामेनैकेन देव-वाम-पादाङ्गुष्ठ-विनिसृता ऽमृत-धारया शरीर-विशिष्टम् आत्मानम् अभिषिच्य
मूल-मन्त्रेण परमात्मानं हृदये प्रवेश्य प्राण-प्रतिष्ठां कुर्यात् ।

अस्य प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा ऋषयः, ऋग्-यजुस्-सामाथर्वाणि
छन्दांसि स-कल-जगत्-सृष्टि-कारणी प्राण-शक्तिर् देवता ओं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों
कीलकं प्राण-प्रतिष्ठा-सिध्य-अर्थे विनियोगः ।

ओं ओं ङं घं गं खं कं आकाशानिल-तेजोऽम्बु-पृथिवी-प्राणात्मने
अं ज्ञानाय हृदयाय नमः ।

ओं ईं जं झं जं छं चं
शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धापनात्मने
इं ऐश्वर्याय शिरसे (स्वाहा)।

ओं ऊं णं ढं डं ठं टं श्रोत्र-त्वक्-चक्षुर्-जिह्वा-घ्राण-व्यानात्मने
उं शक्त्यै शिखायै वषट् ।

ओं ऐं नं धं दं थं तं
वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्थोदानात्मने
(ऐं??) बलाय कवचाय हुम् ।

ओं औं मं भं बं फं पं
वचनादान-गमन-विसर्गानन्द-समानात्मने
ओं तेजसे नेत्र-द्वयाय वौषट् ॥

ओं अः क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं
मनो-बुध्य-अहङ्कार-चित्त-ज्ञानात्मने
अं वीर्यायास्त्राय फट् ।

[[78]]

ध्यानम् ।

रक्ताम्भोधि-स्थ-पोतोल्लसद्-अरुण-सरो-जाधि-रुढा-कराब्जैः
पाशान् कोदण्डम् इक्षुद्भवम् अथ गुणम् अप्य् अङ्कुशं पञ्च-बाणान्।
बिभ्राणा ऽसृक्-कपालं त्रि-णयन-**लसिता** पीन-वक्षो-**रुहाढ्या**
देवी-बालार्क-वर्णा **भवतु** सुख-**करी** प्राण-शक्तिः परा नः ॥

॥ मन्त्रः ॥

आं ह्रीं क्रों यरलवशषसहो हंसः
अमुष्य प्राण इह प्राणः ।

आं ह्रीं क्रों यरलवशषसहो हंसः
अमुष्य जीव इह स्थितः ।

आं क्रीं ह्रों यरलवशषसहो हंसः अमुष्य सर्वेन्द्रियाणि मनो-बुद्धिर् अहङ्कारश् चित्तं
पृथिव्य्-अप्-तेजो-वाय्व्-आकाश-
शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-
श्रोत्र-त्वक्-चक्षुर्-जिह्वा-घ्राण-

वाक्-पाणि-पाद-पायूपस्था
इहागत्य अमुष्य शरीरे सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।

लं हंसः सो ऽहं स्वाहा ।

असुनीते पुनर् अस्मासु चक्षुः पुनः प्राणम् इह नो धेहि भोगम् । ज्योक्पश्येम सूर्यम्
उच्चरन्तम् अनुमते मृडयानस् स्वस्ति । [[TODO: परिष्कार्यम्]]

इति प्राण-प्रतिष्ठां कृत्वा

अलङ्कारः ③

पुनर् अपि पूर्ववच्-छिरसि मूल-मन्त्र-शिरस्कम् अमृत-बीजं विन्यस्य
प्राणायामेन शरीर-विशिष्टम् आत्मानम् अभिषेचयेत् ।

ततः किरीटादि-विन्यसेत्

किरीटाय मकुटाधिपतये नमः

शिरसि ।

श्री-वत्साय श्री-निवसाय नमः

दक्षिणोरसि ।

श्री-कौस्तुभाय दिव्य-रत्नाय नमः

उरो-मध्ये ।

वै वैजयन्त्ये वन-मालायै नमः

पार्श्वयोः ।

सुदर्शनाय हेति-राजाय नमः

दक्षिण-भुजे ।

पाञ्च-जन्याय शङ्खाधिपतये नमः

वाम-भुजे ।

कौमोदक्यै गदाधिपत्यै नमः

ललाटे ।

शार्ङ्गाय चापाधिपतये नमः

शिरसि ।

नन्दकाय खड्गाधिपतये नमः

हृदये ।

इति विन्यस्य

प्रणवादि-नमो ऽनैः

केशवादि-द्वादश-नामभिः द्वादशोर्ध्व-पुण्ड्रान् ध्यात्वा

द्वादशाक्षरेण मन्त्रेण मूर्ध्नि पुण्ड्र-न्यासं ध्यात्वा

पुण्ड्र-मध्ये तत्-तन्-मूर्ति-ध्यानं पूर्ववत् कृत्वा मातृका-न्यासं कुर्यात् ।

[[79]]

मातृका-न्यास-प्रकारः ③

यथा अन्तर् मातृका-न्यासो बहिर् मातृका-न्यासश् चेति मातृका-न्यासो द्वि-विधः ।

तत्र अन्तर् मातृका-न्यासं कृत्वा बहिर् मातृका-न्यासं कुर्यात् ।

अन्तर् मातृका-न्यासः ④

अन्तर् मातृका-न्यासो यथा --

मातृकायाः ब्रह्मा ऋषिः । देवी गायत्री-छन्दः । योग-निद्रा महा-माया विष्णु-शक्तिर् देवता । प्रणवं बीजं अकारः शक्तिः वर्णा नाना-विधाः । सर्व-काम-सिध्य-अर्थे विनियोगः ।

पञ्चाशद्-वर्ण-भेदैः विहित-वदन-दोः पाद-भुक्-कुक्षि-वक्षो-देहाम्
भास्वत्-कपर्दाकलित-शशि-कलाम् इन्दु-कुन्दावदाताम् ।
अक्ष-स्रक्-कुम्भ-चिन्ता-लिखित-वर-करां त्रीक्षणां पद्म-संस्थाम्
अच्छाकल्पाम् अ-तुच्छ-स्तन-घन-भरां भारतीं तां नमामि ॥

इति ध्यात्वा
प्रत्यक्षरं प्रणवादि-नमो ऽन्तं
चतुष्-पत्रे आधारे
षट्-पत्रे गुह्ये
दश-दले नाभौ
द्वा-दश-दले हृदये
षोडश-दले मुखे
द्वि-दले मूर्ध्नि चेति
क्रमेण सर्वत्र प्राग्-आदि-क्रमशो न्यसेत् ।

वासुदेवादि-युत-वैष्णव-मातृका-न्यासाः ④

बहिर् मातृका-न्यासस् तु --

शुद्धा स-बिन्दुका स-विसर्गा स-बिन्दु-विसर्गा तार-पुटिता श्री-पुटिता मान्मथ-बीज-
पुटिता तार-श्री-शक्तिमान्मथैस् समस्तैः पुटिता स-शक्तिकैः केशवादिभिर् युता

इति दश-विधः । तत्र केशवादि-युतायाः मातृकाया न्यासो वैष्णवः । अन्यो ऽपि वासुदेवादि-युतो
वैष्णवो मातृका-न्यासो अस्ति । स चात्र कथ्यते । यथा

वैष्णव्याः मातृकायाः ब्रह्मा ऋषिः । चत्वारो वेदाश् छन्दांसि परमात्मा नारायणो
देवता । अकारो बीजं षकारः शक्तिः शुक्लो वर्णः । क्लां बीजं स्वराश् शक्तयः ।
इति वा । क्लां हूत् । क्लीं शिरः । इत्य् अङ्ग-न्यासः । मोक्षार्थे विनियोगः ।

[[80]]

हस्ते बिभ्रत्-सरसिज-गदा-शङ्ख-चक्राणि विद्यां
पद्मादर्शौ¹ कनक-कलशं मेघ-विद्युद्-विलासम् ।
वामोत्तुङ्ग-स्तनम् अविरलाकल्पनाश्लेष-लोभात्²
एकी-भूतं वपुर् अवतु नः पुण्डरीकाक्ष-लक्ष्म्याः ॥

इति ध्यात्वा,

ओं अं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः, ओं आं सङ्कर्षणाय कीर्त्यै नमः,

भ्रुवोः ।

ओं इं प्रद्युम्नाय नयायै नमः, ओं ईं अनिरुद्धाय मायायै नमः,

नेत्रयोः ।

ओं उं केशवाय श्रियै नमः, ओं ऊं नारायणाय वाग्-ईश्वर्यै नमः,

श्रोत्रयोः ।

ओं ऀ माधवाय कान्त्यै नमः, ओं ँ गोविन्दाय क्रियायै नमः,

नासयोः।

ओं लं विष्णवे शक्त्यै नमः, ओं लृं मधुसूदनाय विभूत्यै नमः,

कपोलयोः।

ओं एं त्रिविक्रमाय इच्छायै नमः ओं ऐं वामनाय प्रीत्यै नमः,

ओष्ठयोः ।

ओं ओं श्री-धराय नत्यै नमः, ओं औं हृषीकेशाय मायायै नमः,

दन्त-पङ्क्त्योः । ओं अं पद्म-नाभाय श्रियै नमः ओं अः दामोदराय महिम्ने नमः

जिह्वा-मूलाग्रयोः ।

ओं कं पद्म-नाभाय धियै नमः । ओं खं ध्रुवाय तारायै नमः । ओं गं अनन्ताय वारुण्यै नमः । ओं घं शक्त्यात्मने शक्त्यै नमः । ओं ङं मधुसूदनाय पद्मायै नमः । ओं चं विद्याधिदेवताय विद्यायै नमः । ओं छं कपिलाय साङ्ख्यायै नमः ।

[[81]]

ओं जं विश्व-रूपाय विश्वायै नमः । ओं झं हंसाय खगायै नमः । ओं ञं क्रोधात्मने भुवे नमः । ओं टं बडबावक्त्राय गवे नमः । ओं ठं धर्माय लक्ष्म्यै नमः । ओं डं वाग्-ईश्वराय वाग्-ईश्वर्यै नमः । ओं ढं एकार्णवश् शयनाय अमृतायै नमः । ओं णं कूर्माय धरण्यै नमः । ओं तं वराहाय छायायै नमः । ओं थं नर-सिंहाय नार-सिंह्यै नमः । ओं दं अमृताहरणाय सुधायै नमः । ओ धं श्री-पतये श्रियै नमः । ओं नं कान्ताय कान्त्यै नमः ।

इति दोः-पत्-सन्ध्य-अङ्गुल्य-अग्रेषु कचटत वर्गान् न्यसेत् ।

ओं पं राहु-जिते विश्वायै नमः ।

दक्षिण-पार्श्वे ।

ओं फं काल-नेमि-घ्ने कामायै नमः

वाम-पार्श्वे ।

। ओं वं पारिजात-हराय सत्यायै नमः,

पृष्ठे ।

। ओं भं शान्तात्मने शान्त्यै नमः

उदरे ।

। ओं मं दत्तात्रेयाय सरोरुहायै नमः

नाभौ ।

। ओं यं न्यग्रोध-शायिने मायाय नमः

नाभि-स्थ-वायौ ।

। ओं रं एक-शृङ्गाय पद्मासनायै नमः

नाभि-स्थ-जाठराग्नौ ।

। ओं लं वामनाय खर्वायै नमः

हारे ।

। ओं वं त्रिविक्रमाय विक्रान्त्यै नमः

कटि-सूत्रे ।

। ओं शं नराय नर-सम्भवायै नमः

दक्षिण-कुण्डले ।

। ओं षं नारायणाय नारायण्यै नमः

वाम-कुण्डले ।

। ओं सं हरये हरि-प्रीत्यै नमः

हृत्-पद्मे ।

। ओं हं कृष्णाय गन्धायै नमः

परमात्मनि ।

ओं क्षं परशु-रामाय काश्यप्यै नमः

देह-प्रभायाम् ।

। ओं रं रामाय वैदेह्यै नमः

नासाग्रे ।

। ओं यमाय वेद-विदे निद्यायै नमः

हृदये ।

। ओं जिह्वा-मूलीयाय कल्किने पद्मिन्यै नमः,

जिह्वा-मूले ।

। ओं उपध्मानीयाय पाताल-शायिने नाग-शायिन्यै नमः,

ओष्ठयोः । इति मातृका-न्यासं कुर्यात् ।

। अत्र वैदिकं तान्त्रिकं, वैदिक-तान्त्रिकं च

इति समाराधनं त्रि-विधम् ।

। वैदिकं नाम पुरुष-सूक्त-ऋग्भिर् वा अन्यैर् वेद-मन्त्रैर् वा क्रियमाणं समाराधनम् ।
तान्त्रिकं नाम भगवच्-छास्त्रोक्तैर् नारायणाष्टाक्षर-वासुदेव-द्वादशाक्षर--विष्णु-षड्-
अक्षर--द्वयाख्य--मन्त्र-रत्न--विष्णु-गायत्री-रूपैर् मन्त्रैः क्रियमाणैस् समाराधनम्

इति ।

। वैदिक-तान्त्रिकं नाम उक्तेषु भगवन्-मन्त्रेषु केनचिद् एकेन सहितैः वेदोक्त-मन्त्रैस्
समाराधनम्

इति ।

[[82]]

०३ समाराधनोपयुक्त-मन्त्र-न्यासः ②

प्रणव-मन्त्र-न्यासादि-प्रकारः ③

अथ समाराधनोपयुक्त-मन्त्राणाम् ऋषिच-छन्दो देवतानि अनुसन्धाय समाराधनम् आरभेत् ।
यथा -

अस्य श्री-प्रणव-मन्त्रस्य अन्तर् यामि ऋषिः, देवी गायत्री-छन्दः, परमात्मा देवता ।
अं बीजम्, उं शक्तिः, मं कीलकं, बुद्धिस् तत्त्वं, परम-व्योम-क्षेत्रं, शुक्लो वर्णः ।
भगवत्-प्रीत्य्-अर्थ उच्छवास-निश्वास-रूपेण षट्-शताधिकैक-विंशति-सहस्र-कृत्वः
प्रणव-जपं करिष्ये ।

आं ज्ञानाय हृदयाय नमः । ऐ ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ऊं शक्त्यै शिवायै वौषट् । ऐं
बलाय कवचाय हुम् । औं तेजसे नेत्राभ्यं वौषट् । अः वीर्यायास्त्राय फट् । अं ज्ञानाय
हृदयाय नमः । ई ऐश्वर्याय पृष्ठाय नमः । ऊं शक्त्यै बाहुभ्यां नमः । ऐं बलाय ऊरुभ्यां
नमः । औं तेजसे जानुभ्यां नमः । अः वीर्याय पादाभ्यां नमः ।

इत्य् अङ्ग-न्यासं कुर्यात् ।

ओं भूः ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं भुवः ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं सुवः शक्त्यै
शिखायै वषट् । ओं महः बलाय कवचाय हुम् । ओं जनः तेजसे नेत्र-त्रयाय वौषट् ।
ओं तपः वीर्याय अस्त्राय फट् । ओं सत्यं परमात्मने हृदयाय नमः ।

इति वा अङ्ग-न्यासं कृत्वा ॥

विष्णुं भास्वत्-किरीटां गद-वलय-गला-कल्प-हारोदराङ्घ्रि
श्रोणी-भूषं३ सवक्षो मणि-मकर-महा-कुण्डल-मण्डिताङ्गम् ।
हस्तोद्यच्छक्र-शङ्खाम्बु-ज-गदम् अमलं पीत-कौशेयम् आशा विद्योतद्-भासम्
उद्यद्-दिन-कर-सदृशं पद्म-संस्थं नमामि ॥

इति ध्यात्वा प्रणव-जपं कृत्वा,

[[83]]

प्रासाद-मन्त्र-न्यासादि३

अस्य श्री-प्रासाद-मन्त्रस्य अन्तर्-यामि ऋषिः । गायत्री-छन्दः । परमात्मा देवता ।
भगवत्-प्रीत्य्-अर्थ उच्छवास-निश्वास-रूपेण षट्-छताधिकैक-विंशति-सहस्र-कृत्वः
प्रासाद-मन्त्र-जपं करिष्ये ।

हां ज्ञानाय हृदयाय नमः । हीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । हूं शक्त्यै शिखायै वौषट्, हैं
बलाय कवचाय हुम् । हीं तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । हः वीर्यायास्त्राय फट् । हां ज्ञानाय
उदराय नमः ; हीं ऐश्वर्याय पृष्ठाय नमः । हूं शक्त्यै बाहुभ्यां नमः । हैं बलाय ऊरुभ्यां
नमः । हीं तेजसे जानुभ्यां नमः । हः वीर्यायास्त्राय फट् ।

इत् अङ्ग-न्यासं कृत्वा "हौं" इति प्रसाद-मन्त्र-जपं कृत्वा

अजपा-मन्त्र-न्यासादिॐ

अजपा-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री-छन्दः, हंसो देवता हं बीजम् । राश् शक्तिः । भगवत्-प्रीत्य्-अर्थम् उच्छवास-निश्वास-रूपेण षट्-छताधिकैक-विंशति-सहस्र-कृत्वः अजपा-मन्त्र-जपं करिष्ये ।

सूर्याय ज्ञानाय हृदयाय नमः । सोमायैश्वर्याय शिरसे स्वाहा । निरञ्जनाय शक्त्यै शिखायै वौषट् । निराभासाय बलाय कवचाय हुम् । हंसाय वीर्यायास्त्राय फट् । हंसां ज्ञानाय हृदयाय नमः । हंसीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । हंसूं शक्त्यै शिखायै वौषट् । हंसै बलाय कवचाय हुम् । हंसौ तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । हंसः वीर्यायास्त्राय फट् ।

इति अङ्ग-न्यासं कृत्वा "हंसः" इत् अजपा-मन्त्र-जपं कुर्यात् ।

[[84]]

पञ्चोपनिषन् मन्त्रस्य ऋषिच् छन्दो देवताःॐ

पञ्चोपनिषन्-मन्त्रस्य ब्रह्म-वसिष्ठ-पराशर-व्यास-शुका ऋषयः गायत्र्य्-उष्णिग्-अनुष्टुप्-त्रिष्टुप्-जगत्यः छन्दांसि । आकाश-वाय्व्-अग्न्य्-अम्बु-पृथिव्यो देवताः । षकार-यकार-रेफ-वकार-लकारा बीजानि । नमश् शक्तिः । देहे पञ्चोपनिषन्-न्यासार्थे विनियोगः ।

ओं षौं नमः पराय परमेष्ठ्य्-आत्मने वासुदेवाय नमः । ओं यां नमः पराय पुरुषात्मने सङ्कर्षणाय नमः । ओं रां नमः पराय विश्वात्मने अनिरुद्धाय नमः । ओं वां नमः पराय निवृत्त्य्-आत्मने प्रद्युम्नाय नमः । ओं लां नमः पराय सर्वात्मने नारायणाय नमः ।

इति शिरो-नासाग्र-हृदय-गुह्य-पादेषु विन्यसेत् । इति सृष्टि-न्यासः । विपर्ययेन संहार-न्यासः । इमान् पञ्चोपनिषन्-मन्त्रान् यथा-शक्ति जपेत् ।

[[85]]

अष्टाक्षर-मन्त्रस्य न्यासादि-जप-प्रकारःॐ

अस्य श्रीमद्-अष्टाक्षर-महा-मन्त्रस्य अन्तर्-यामी भगवान् नारायण ऋषिः बदरिकाश्रम-वासी नारायण ऋषिर् इति वा । देवि गयत्री-छन्दः परमात्मा भगवन्-

नारायणो देवता । ओं बीजम्, आय-शक्तिः४, अं बीजं, उं शक्तिर्, इति वा मं
कीलकम् । परम-व्योम-क्षेत्रम् । बुद्धिस् तत्त्वं । शुक्लो वर्णः । ह्रीं कवचम् । क्लीम्
अस्त्रम् । उदात्त-स्वरः । श्रीमन्-नारायण-प्रीत्य्-अर्थे विनियोगः ।

ओं नमः पराय श्रीमद्-अष्टाक्षर-प्रदात्रे गुरवे नम

इति शिरसि ।

ओं नमः परेभ्यो श्रीमद्-अष्टाक्षर-प्रदातृभ्यो ऽस्मत् परम-गुरुभ्यो ऽस्मत् सर्व-गुरुभ्यश्
च नमः

इति शिखायां ।

ओं नमः पराय श्रीमद्-अष्टाक्षरात्मने मन्त्र-राजाय नम

इति हृदये ।

ओं नमः पराय श्रीमद्-अष्टाक्षर-छन्दसे देव्यै गायत्र्यै नम

इति मुखे ।

ओं नमः पराय श्रीमद्-अष्टाक्षर-ऋषये अन्तर्-यामिने नारायणाय

इति शिरसि ।

ओं नमः पराय श्रीमद्-अष्टाक्षर-परमात्मने नारायणाय

इति हृदये,

ओं नमः पराय श्रीमद्-अष्टाक्षर-बीज-भूताय अकाराद् उत्थिताय प्रणवात्मने भगवते
नारायणाय

इति गुह्ये ।

ओं नमः पराय श्रीमद्-अष्टाक्षर-शक्ति-भूताय उकारात्मने भगवते नारायणाय

इति पादयोर् विन्यस्य । आकूर्परम् अङ्गुल्य्-अग्र-पर्यन्तं मूल-मन्त्रेण कर-द्वये ऽपि अन्तर्-बाह्ये
पार्श्वयोश् च कर-तल-पृष्ठयोः कर-तल-पार्श्वयोश् च त्रिस् त्रिः परामृश्य कर-तल-मध्ययोर्
मध्यमाङ्गुलिभ्यां प्रत्येकं मूल-मन्त्रं जपेत् । कर-द्वये ऽपि दक्षिणम् आरभ्य तर्जन्य्-आदि-तर्जन्य्-
अन्तं सर्वास्व् अङ्गुलीषु स-बिन्दुकानि प्रणव-सम्पुटितानि मन्त्राक्षराण्य् अष्टौ क्रमेणाङ्गुलेन न्यसेत्
। अयं सृष्टि-न्यासो ब्रह्म-चारिणः । कर-द्वये ऽपि दक्षिणम् आरभ्य तत्-तत्-तर्जन्य्-आदि-तत्-
तत्-कनिष्ठिकान्त-न्यासः । स्थिति-न्यासो ऽयं गृह-स्थस्य ।

वामम् आरभ्य तर्जन्य-आदि-तर्जन्य-अन्त-न्यासः संहार-न्यासो ऽयं वान-प्रस्थ-यत्योः । कर-द्वयेष्व् उभयाङ्गुष्ठम् आरभ्य तत्-तत्-कनिष्ठिकान्तासु व्याप्तत्वेन वा न्यसेत् । एवम् अङ्गुलि-न्यासं कृत्वा अष्टाक्षरान्तस्थानि प्रणव-सम्पुटितान्य् एकैकानि अक्षराणि क्रमेण दक्षिणाङ्गुष्ठ-प्रथम-पर्वारभ्य वाम-कनिष्ठिकान्त्य-पर्व-पर्यन्तं विन्यस्य तुरीयावृत्ताव् अवशिष्ट-वर्ण-द्वयेन कर-तल-कर-पृष्ठौ संमृशेत् । एवं पर्व-न्यासं कृत्वा

ओं कठोत्काय स्वाहा ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं महोत्काय स्वाहा ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं वीरोत्काय स्वाहा शक्त्यै शिखायै वौषट् । ओं व्युत्काय स्वाहा बलाय कवचाय हुम् । ओं सहस्रोत्काय स्वाहा तेजसे नेत्र-द्वयाय वौषट् ।

इति पञ्चाङ्ग-न्यासं कृत्वा

ओं ओं ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं नम् ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं मों शक्त्यै शिखायै वौषट् । ओं नां बलाय कवचाय हुम् ।

कवचानुबन्धानुकारिणा कर-द्वयेन कर्णादि-कट्य्-अन्तस्थाने ।

ओं रां तेजसे नेत्राभ्यां वौषट्

तर्जनी मध्यमाभ्यां नेत्रयोः ।

ओं यं वीर्यायास्त्राय फट्

समुष्टिकाङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां भुजाग्रयोः ।

ओं णां तेजसे उदराय नमः । ओं यं तेजसे पृष्ठाभ्यां नमः । ओं यं तेजसे बाहुभ्यां नमः । ओं यं तेजसे ऊरुभ्यां नमः । ओं यं तेजसे जानुभ्यां नमः ।

एवम् उदर-पृष्ठ-बाहू-जानुषु अङ्गुष्ठ-रहिताभिर् अङ्गुलीभिर् न्यसेत् ।

ओं यं तेजसे पादाभ्यां नमः

सर्वाभिर् अङ्गुलीभिः पादयोः ।

इति द्वादशाङ्ग-न्यासं कृत्वा

ओं पद्माय नमः

दक्षिण-कर-तले ।

। ओं कौमोदक्यै गदाधिपत्न्यै नमः

वाम-कर-तले ।

। ओं सुदर्शनाय हेति-राजाय नमः

दक्षिण-भुजे ।

। ओं पाञ्च-जन्याय शङ्खाधिपतये नमः

वाम-भुजे ।

। ओं किरीटाय मकुटाधिपतये नमः

शिरसि ।

। ओं श्री-वत्साय श्री-निवासाय नमः

दक्षिणोरसि ।

। ओं श्री-कौस्तुभाय दिव्य-रत्नाय नमः

उरो मध्ये ।

। ओं श्री-वैजयन्त्यै वन-मालायै नमः

पादयोः ।

। ओं श्रीं श्रियै नमः

दक्षिण-पार्श्वे ।

। ओं ह्रीं पुष्ट्यै नमः

वाम-पार्श्वे ।

। ओं सै सरस्वत्यै नमः

मुखे ।

। ओं द्रां निद्रायै नमः

पश्चाद्-भागे ।

ओं क्लीं कान्त्यै नमः

ऊर्ध्व-देहे

ओं कं पृथिव्यै नमः

पादयोः ।

ओं गरुडाय नम

ऊर्वोः । यद् वा दक्षिणाङ्गुष्ठम् आरभ्य वाम-कनिष्ठिकान्तं किरीटादि-पृथिव्य्-अन्तानां न्यासः ।
गरुडं कर-तलयोर् न्यसेत् ।

[[87]]

अष्टाक्षर-मन्त्रस्य देह-न्यासः ③

अथ देह-न्यासः । मूर्धादि-व्यापकत्वेन मूल-मन्त्रेण त्रिः परामृशेत् । एते न्यासाः सर्वेषां समानाः ।
अथ स-बिन्दुकानि प्रणव-सम्पुटितानि अष्टाक्षराणि क्रमेण मूर्धादि-पादान्तेषु स्थानेषु[[??]]
न्यसेत् । सृष्टि-न्यासो ऽयं ब्रह्म-चारिणः ।

एवं नाभ्य्-आदि-पादान्तेषु मूर्धादि-हृदय-पर्यन्तेषु न्यसेत् । स्थिति-न्यासो ऽयं गृह-स्थस्य ।

एवं पादादि-मूर्धान्तेषु न्यसेत् । संहार-न्यासो ऽयं वान-स्थ--यत्योः ।

अत्र मूर्ध्नि मध्यमया, तर्जनी-मध्यमाभ्यां नेत्रयोः, अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां मुख-मध्ये, अङ्गुष्ठ-
तर्जनीभ्यां हृदये, नाभौ कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां, गुह्ये जान्वोश् च अङ्गुष्ठ-रहिताभिर् अङ्गुलीभिः, सर्वाभिर्
अङ्गुलीभिः पादयोर् न्यसेत् ।

पादयोः जान्वोः ऊर्वोः उदरे हृदि, मुखे शिरसि चैवं तैः क्रमात् व्युत्क्रमतो न्यसेत् । अथ मूल-
मन्त्रेण शिरः-प्रभृति-पाद-पर्यन्तं सर्वाङ्ग-न्यासः । ततो ऽस्त्र-मन्त्रेण दिग्-बन्धः । अथवा स-
बिन्दुकैर् मन्त्राक्षरैर् अष्टभिर् दिग्-बन्धः । प्रणवेनोर्ध्वम् अधश् चेति वा दिग्-बन्धः । अथ कर-
द्वयेन अष्टाक्षरं चक्रं बद्ध्वा आत्मनः प्रादक्षिण्येन "ओं श्री-सुदर्शनाय हेति-राजाय नम" इति
चक्र-मुद्रया रक्षां कुर्यात् ।

अत्र केचित् संहितान्तरे

पद्मं दक्षिण-भुजे । गदां वामे, दक्षिणे सुदर्शनं, वामे शङ्खं मुद्रा-रूपेण न्यसेत् ।
किरीटं शिरसि । श्री-वत्सं दक्षिणोरसि । उरोर् मध्ये कौस्तुभम् । वैजयन्तीं च पार्श्वयोः
श्रीयं दक्षिण-पार्श्वे । पुष्टिं वाम-पार्श्वके सरस्वतीं मुखे । निद्रां पश्चाद्-भागे च
विन्यसेत् । कान्तिम् ऊर्ध्व-देशे । पृथिवीं पादयोः । गरुडम् ऊर्वोर्

इति वदन्ति ।

[[88]]

सव्यं पादं प्रसार्य श्रित-दुरित-हरं दक्षिणं कुञ्चयित्वा
जानुन्य् आधाय सव्येतरम् इतर-भुजं नाग-भोगे निधाय ।
पश्चाद् बाहु-द्वयेन प्रतिभट-शमने धारयन् शङ्ख-चक्रे
देवी-भूषादि-जुष्टो जनयतु जगतां शर्म वैकुण्ठ-नाथः ॥
पद्माक्षम् आपरिगतं विमलेन्द्र-नील-श्यामं चतुर्-भुज-धृतारि-गदाब्ज-यष्टिम् ।
केयूर-हार-वन-दाम-किरिट-काञ्ची
श्री-वत्स-कैस्तुभ-मुखाभरणैर् उपेतम् ॥
श्रीमत्-पिशङ्ग-वदनं सनकादि-भक्तैः
साङ्गैस् तु तं च निगमोपनिषत् पुराणैः ।
सानुग्रह-स्मित-कृपादृशम् आश्रितानाम्
नारायणं भव-हरं शरणं प्रपद्ये ॥

इति वा ध्यात्वा मानसैर् उपचारैर् अभ्यर्च्य अष्टोत्तर-सहस्रम् अष्टोत्तर-शतम् अष्टा-विंशति-वारं वा
कुर्यात् ।

षष्ठाद्ययोर् उदात्तः स्यात् स्वरितो ऽन्त्य-द्वितीययोः ।
प्रचयस् त्रि-चतुर्थाभ्यां निहतं पञ्चमाक्षरम् ॥
उदात्त-स्वर-ओङ्कार इत्य् अष्टाक्षर-लक्षणम् ।
ओं नमो नारायणाय ॥

इति मन्त्रः इत्य् एवम् अष्टाक्षर-मन्त्र-जपं कुर्यात् ।

[[89]]

द्वयाख्य-महा-मन्त्रस्य ऋषिच् छन्दो देवता-न्यासादि ③

अस्य श्री-द्वयाख्य-महा-मन्त्रस्य लक्ष्मी-नारायण ऋषिः गायत्री-छन्दः । विष्वक्सेन
ऋषिः अतिच्छन्दः इति वा । श्रीमन्-नारायणः परमात्मा देवता । ओं बीजं । नमश्
शक्तिः । ह्रीं कीलकम् । श्रीं कवचम् । ऐम् अस्त्रम् । श्वेतो वर्णः । मोक्षार्थं विनियोगः
।

ओं श्रीमन्-नारायण-चरणौ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । शरणं तर्जनीभ्यां नमः । ओं प्रपद्ये
मध्यमाभ्यां नमः । श्रीमते अनामिकाभ्यां नमः । ओं नारायणाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः
। ओं नमः कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

इत् अङ्गुलि-न्यासं कृत्वा प्रणव-सम्पुटितम् आद्यम् अक्षरं कर-तलयोर् विन्यस्य शेषाणि चतुर्-विंशत्य्-अक्षराणि प्रणव-सम्पुटितानि चतुर्-विंशति-पर्वसु विन्यसेत् ।

ओं श्रीमन्-नारायण-चरणौ ज्ञानाय हृदयाय नमः शरणम् ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा ।
प्रपद्ये शक्त्यै शिखायै वौषट् । श्रीमते बलाय कवचाय हुम् । नारायणाय तेजसे
नेत्राभ्यां वौषट् । नमः वीर्यायास्त्राय फड्

इति षड्-अङ्ग-न्यासं कृत्वा

मूर्ध्नि फाल-नेत्र-नासा-श्रवणेषु तथा ऽऽनने ।
भुजयोर् हृत्-प्रदेशे च स्तनयोर् नाभि-मण्डले ॥
पृष्ठे च जघने कट्योर् ऊर्वोर् जान्वोश् च पादयोः ।
पञ्च-विंशाक्षराण्य् अस्य क्रमेणाङ्गेषु विन्यसेत् ॥

एवं न्यासं कृत्वा ध्यानं कुर्यात् ।

[[90]]

इन्दीवर-दल-श्यामं कोटि-सूर्याग्नि-वर्चसम् ।
चतुर्-भुजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरण-भूषितम् ॥
पद्मासन-गतं देवं पुण्डरीक-दलेक्षणम् ।
रत्नारविन्द-सदृश-पद-हस्त-तलाञ्जितम् ॥
माणिक्य-मुकुटोपेतं नील-कुञ्चित-शीर्ष-जम्
श्री-वत्स-कौस्तुभोरस्कं वन-माला-विराजितम् ।
दिव्य-चन्दन-लिप्ताङ्गं दिव्य-पुष्पावतंसकम्
हार-कुण्डल-केयूर-नूपुरादि-विराजितम् ॥
कटकैर् अङ्गुलीयैश् च पीत-वस्त्रेण शोभितम् ।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-पाणिनं पुरुषोत्तमम् ॥
वामाङ्के चिन्तयेत् तस्य देवीं कमल-लोचनाम् । तरुणीं सुकुमाराङ्गीं सर्व-लक्षण-
शोभिताम् ॥
दुकूल-वस्त्र-संवीतां सर्वाभरण-भूषिताम् ।
तप्त-काञ्चन-सङ्काशां पीनोन्नत-पयो-धराम् ॥
रत्न-कुण्डल-संयुक्तां नील-कुन्तल-शीर्ष-जाम् ।
दिव्य-चन्दन-लिप्ताङ्गीं दिव्य-पुष्पावतंसकाम् ॥
रत्नाब्जं मातु-लिङ्गं च दर्पणं वरदं तथा ।
देवीं च बिभ्रतीं दोर्भिश् चिन्तयेद् इष्ट-दां सदा ॥

एवं ध्यात्वा

[[91]]

अर्कोघाभं किरीटान्वितं मकर-लसत् कुण्डलं दीप्त-राजत्,
केयूरं कौस्तुभाभाशबल-रुचिर-भा-रक्त-पीताम्बरं च ।
नाना-रत्नांशु-भिन्नाभरण-शत-युजं श्री-धराश्लिष्ट-पार्श्वम्
वन्दे दोस्-सक्त-चक्राम्भोरुहदर-गदं विश्व-वन्द्यं मुकुन्दम् ॥

इति वा ध्यात्वा द्वायाख्य-मन्त्र-रत्न-जपं कृत्वा

चरम-श्लोक-मन्त्र-न्यासादि③

अथ चरम-श्लोक-मन्त्र-न्यासः ।

ओम् अस्य चरम-श्लोक-महा-मन्त्रस्य वेद-व्यासो भगवान् ऋषिः । अनुष्टुप्-छन्दः ।
परमात्मा श्री-कृष्णः श्रीमन्-नारायणो देवता । अशोच्यान् अन्वशोचस् त्वम् इति
बीजं । सर्व-धर्मान् परित्यज्येति शक्तिः । ऊर्ध्व-मूलम् अधश् शाखाम् इति कीलकम्
। श्री-वासुदेव-प्रीत्य्-अर्थे विनियोगः ।

सर्व-धर्मान् परित्यज्य अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । माम् एकं शरणं व्रज तर्जनीभ्यां नमः । अहं
त्वा सर्व-पापेभ्यो मध्यमाभ्यां नमः । मोक्षयिष्यामि मा शुचः अनामिकाभ्यां नमः ।
सर्व-धर्मान् ... व्रज कनिष्ठिकाभ्यां नमः । अहं त्वा ... मा शुचः कर-तल-कर-
पृष्ठाभ्यां नमः । सर्व-धर्मान् परित्यज्य ज्ञानाय हृदयाय नमः । मां + व्रज ऐश्वर्याय
शिरसे स्वाहा । अहं + पापेभ्यः शक्त्यै शिखायै वौषट् । मोक्षयिष्यामि मा शुचः
बलाय कवचाय हुम् । सर्व-धर्मान् + व्रज तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । अहं + मा शुचः
वीर्याय अस्त्राय फट् । अर्कोघाभम् इति ध्यानं,

यथा-शक्ति चरम-श्लोक-मन्त्र-जपं कुर्यात् ।

[[92]]

वासुदेव-द्वादशाक्षर-मन्त्र-न्यासादि③

अस्य श्री-वासुदेव-द्वादशाक्षर-महा-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः । वासुदेव ऋषिर् इति वा ।
देवी गायत्री-छन्दः । भगवान् वासुदेवः परमात्मा देवता । ओं बीजम् । नं शक्तिः ।
अं बीजम् । आय-शक्तिर् इति वा । वासुदेवायेति कवचम् । भगवत इति कीलकम्
। श्वेतो वर्णः । बुद्धिस् तत्त्वम् । परं व्योम क्षेत्रम् । श्री-वासुदेव-प्रसाद-सिद्ध्य्-अर्थे
जपे विनियोगः ।

प्रणव-सम्पुटितैर् द्वादशाक्षरैर् अङ्गुलि-पर्वसु न्यासं कुर्यात् । तत्र त्रिधा ऽऽवृत्तौ अवशिष्ट-वर्ण-
षट्कैर् दक्षिण-वाम-प्रकोष्ठौ कर-तले कर-पृष्ठे च संमृशेत् । प्रणव-सम्पुटितैर् एव द्वादशाक्षरैर्
दशाङ्गुलि-न्यासं कुर्वन् अवशिष्ट-वर्ण-द्वयेन कर-तल-कर-पृष्ठौ संमृशेत् ।

पादयोर् जान्वोर् उर्वोर् नाभौ कुक्षौ ततो हृदि ।
भुजयोस् स्कन्धयोर् वक्त्रे नासा ऽऽलोक-शिरस्सु च ॥

एवं क्रमेण विन्यस्य तार-सम्पुटिताक्षरैः शिरः-प्रभृति-पादान्तं विन्यसेत् । तैः क्रमात् सुधीः । अथ
अङ्ग-न्यासं पदैः कुर्यात् । अयं सृष्टि-न्यासो ब्रह्म-चारिणः ।

नाभ्य्-आदि-पादान्तेषु शीर्षादि-कुक्षि-पर्यन्तं स्थिति-न्यासः । पादादि-शिरः-पर्यन्तं संहार-न्यासः
।

स-पाद-जानु-युगले लिङ्ग-नाभ्य्-उदरेषु च ।
हृद्-दोर्-गलास्य दृङ्-मस्त-शिखास्व् अक्षरशो न्यसेत् ॥

अयं न्यासो वन-स्थ-यत्योः ।

शिखा-ललाट-नेत्रास्य-गल-दोर्-आसनेष्व् अपि ।
स-कुक्षि-नाभि-लिङ्गाख्य-जानु-पादेषु विन्यसेत् ॥

अयं सृष्टि-न्यासो ब्रह्म-चारिणः ।

हृत्-कुक्षि-नाभिषु तथा गुह्य-जानु-पदेष्व् अथ ।
कर-कर्णास्य दृङ्-मस्त-शिखासूर्ध्व् च विन्यसेत् ॥

[[93]]

अयं स्थिति-न्यासो गृह-स्थस्य । तत्र दक्षिण-हस्ते

ओं ओं ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं नं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं मों शक्त्यै शिखायै
वौषट् । ओं भं बलाय कवचाय हुम् । ओं गं वीर्यायास्त्राय फट् । ओं वं तेजसे
नेत्राभ्यां वौषट् ।

वाम-हस्ते

ओं तें ज्ञानाय हृदयाय नमः

इति कर-तलम् ।

ओं वाम् ऐश्वर्याय पृष्ठाय नमः । ओं सुं शक्त्यै बाहुभ्यां नमः । ओं दें बलाय ऊरुभ्यां
नमः । ओं वां तेजसे जानुभ्यां नमः । ओं यं तेजसे वीर्याय पादाभ्यां नमः ।

वाम-कर-तलम् आरभ्य दक्षिण-कर-तल-पर्यन्तं संहार-न्यासः वन-स्थ-यत्योः । दक्षिण-कर-
तलम् आरभ्य वाम-कर-तल-पर्यन्तं सृष्टि-न्यासो ब्रह्म-चारिणः । पादयोर् जान्वोर् उर्वोर् इत्य्
आदिना स-पाद-जान्व्-इत्यादिना वा देह-न्यासं कुर्यात् ।

ओं ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं नमः ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं भगवते शक्त्यै शिखायै वौषट् । ओं वासुदेवाय बलाय कवचाय हुम् । ओं नमो भगवते तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । वासुदेवाय वीर्यायास्त्राय फड्

इति षड्-अङ्ग-न्यासं कुर्यात् । यद् वा

ओम् आचक्राय स्वाहा ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं विचक्राय स्वाहा ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं सुचक्राय स्वाहा शक्त्यै शिखायै वषट् । ओं त्रैलोक्य-चक्राय स्वाहा बलाय कवचाय हुम् । ओं महा-चक्राय स्वाहा तेजसे नेत्र-द्वयाय वौषट् । ओं असुरान्तक-चक्राय स्वाहा वीर्यायास्त्राय फड्

इति वा षड्-अङ्ग-न्यासं कुर्यात् । यद् वा

ओं कुब्जोल्काय फट् ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं महोल्काय फट् ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं वीरोल्काय फट् शक्त्यै शिखायै वौषट् । व्युल्काय फट् बलाय कवचाय हुम् । ओं सहस्रोल्काय फट् तेजसे नेत्र-द्वयाय वौषट् । तेज उल्काय फट् वीर्यायास्त्राय फड्

इति वा षड्-अङ्ग-न्यासं कुर्यात् ।

[[94]]

ध्यानम्

क्षीराब्धौ शेष-पर्यङ्के समासीनं श्रिया सह ।
नील-जीमूत-सङ्काशं तप्त-काञ्चन-भूषितम् ॥
पीताम्बर-धरं देवं रत्नाब्ज-दल-लोचनम् ।
दीर्घेश् चतुर्भिर् दोर्भिश् च दिव्याभरण-भूषितैः ॥
शङ्खं चक्रं गदां शार्ङ्गं बिभ्राणं परमेश्वरम् ।
नाना-कुसुम-सम्बन्ध-नील-कुञ्चित-शीर्ष-जम् ॥
श्री-वत्स-कौस्तुभोरस्कं वन-माला-विभूषितम् ।
समाश्लिष्टं श्रिया देव्या पद्मया पद्म-हस्तया ॥
स्तूयमानं विमानस्थैर् देव-गन्धर्व-किन्नरैः ।
मुनिभिस् सनकाद्यैश् च सेवितं च सुरर्षिभिः ॥

इति ध्यत्वा

विष्णुं शारद-चन्द्र-कोटि-सदृशं शङ्खं रथाङ्गं गदाम्
अम्भोजं दधतं सिताब्ज-निलयं कान्त्या जगन्-मोहनम् ।
आबद्धाङ्गद-हार-कुण्डल-महा-रत्न-स्फुरत् कङ्कणं
श्री-वत्साङ्कम् उदार-कौस्तुभ-धरं वन्दे मुनीन्द्रैस् स्तुतम् ॥

इति ध्यात्वा "ओं नमो भगवते वासु-देवाय" इति द्वादशाक्षर-मन्त्रं जपेत् ।

[[95]]

विष्णु-षड्-अक्षर-मन्त्र-न्यासादि③

अस्य श्री-विष्णु-षड्-अक्षर-महा-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री-छन्दः श्री-महा-विष्णुर् देवता । ओं बीजं नमश् शक्तिः । श्री-महा-विष्णु-प्रीत्य्-अर्थे जपे विनियोगः ।

प्रणव-सम्पुटितैर् मन्त्र-गतैर् अक्षरैः पञ्चधा ऽऽवृत्तैः पर्व-न्यासं कृत्वा द्वेधा ऽऽवृत्तैर् अङ्गुलि-न्यासं कृत्वा ऽवशिष्ट-वर्ण-द्वयेन कर-तल-कर-पृष्ठौ संमृश्य मन्त्र-गतैस् त्रिभिः पदैर् द्विर् आवृत्तैर् षड्-अङ्ग-न्यासं कृत्वा प्रणव-सम्पुटितानि मन्त्राक्षराणि

मूर्ध्नि आस्ये हृदये बाह्वोः पृष्ठे गुह्ये च

इति क्रमाद् विन्यस्य "ओं सहस्रारा हुं फड्" इति चक्र-मुद्रया दिग्-बन्धनं कृत्वा ध्यानं कुर्यात् । यथा - अधो-मुखं हृदय-पङ्कजं प्रणवेन उन्-मुखी-कृत्य तत्त्वमयानि केसराणि विकसितानि कृत्वा तस्योपरि वह्न्य्-अर्क-सोम-मण्डलानि क्रमेण सञ्चिन्त्य तद्-उपरि नाना-रत्नमयं पीठं सञ्चिन्त्य तन्-मध्ये ऽष्ट-दल-पद्मं सञ्चिन्त्य

तस्मिन् विचिन्तयेद् देवं कोटि-शीतांशु-वर्चसम् ।
चतुर्-भुजं सुन्दराङ्गं युवानं पद्म-लोचनम् ॥
कन्दर्प-कोटि-लावण्यं सर्व-लक्षण-लक्षितम् ।
श्लक्ष्ण-नासा-लसं गण्ड-बिम्बितोज्ज्वल-कुण्डलम् ॥
केयूराङ्गद-हाराद्यैः भूषणैर् उपशोभितम् ।
दिव्य-चन्दन-लिप्ताङ्गं दिव्य-पुष्प-विराजितम् ॥
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मं धारिणं दोर्भिर् उज्ज्वलैः ।
दिव्य-पीताम्बर-धरं वन-माला-विभूषितम् ॥
श्री-वत्स-कौस्तुभोरस्कं दिव्य-पुष्पावतंसकम् ।
तप्त-काञ्चन-वर्णाभं पद्मया पद्म-हस्तया
समाश्लिष्ट-हरिं देवं चिन्तये हृदि सर्वदा ॥

[[96]]

इति ध्यात्वा :--

स-शङ्ख-चक्रं स-किरीट-कुण्डलम्
स-पीत-वस्त्रं सरसी-रुहेक्षणम् ।

स-हार-वक्षस्-स्थल-कौस्तुभ-श्रियम्
नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्-भुजम्॥

इति ध्यात्वा --

"ओं नमो विष्णवे" इति विष्णु-षड्-अक्षर-मन्त्रं जपेत् ।

विष्णु-गायत्री-मन्त्र-न्यासादि③

अस्य श्री-विष्णु-गायत्री-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः । देवी गायत्री-छन्दः । परमात्मा
भगवान् विष्णुर् दवेता । ओं क्रुद्धोल्काय स्वाहा

इत्य् आदिभिः षड्-अङ्ग-न्यासं कृत्वा --

मूर्ध्नि फाले नयनयोः नासिका-पुटयोस् तथा ।
श्रोत्रयोर् गण्डयोः कर्णे हृदये बाहु-मूलयोः ॥
हस्तयोः कुक्षि-मध्ये च गुह्ये चोर्वोश् च जङ्घयोः ।
पादयोश् च क्रमाद् एवम् अक्षराणि च विन्यसेत् ॥

[[97]]

ध्यानम् --

काल-मेघ-निभं सौम्यं चतुर्-बाहुं किरीटिनम् ।
शङ्ख-चक्र-गदा-पाणिं गरुडारूढम् अच्युतम् ॥

इति ध्यात्वा

ओं नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि - तन् नो विष्णुः प्रचोदयात्

इति विष्णु-गायत्रीं जपेत् ।

श्री-मन्त्रस्य ऋष्यादि③

अस्य श्री श्री-मन्त्रस्य भृगु ऋषिः । निचृद्-गायत्री-छन्दः । श्रीर् देवता । शं बीजं । रं
शक्तिः । श्रां हृत् । श्रीं शिरः ।

इत्य् आद्य्-अङ्ग-न्यासं कृत्वा

भूयाद् भूयो द्वि-पद्मा ऽभय-वरद-करा तप्त-कार्तस्वराभा
शुभ्राभेभ-युग्म-द्वय-कर-धृत-कुम्भाद्भिर् आसिच्यमाना ।
रत्नौघा-बद्ध-मौलिर् विमलतर-दुकूलार्तवालेपनाढ्या
पद्माक्षी पद्म-नाभोरसि कृत-वसतिः पद्म-गा श्रीः श्रियै नः॥

इति ध्यात्वा

"ओं श्रीं" इति श्री-मन्त्रं जपेत् ।

[[98]]

पुरुष-सूक्त-मन्त्रस्य ऋष्यादि③

श्रीमत्-पुरुष-सूक्त-मन्त्रस्य श्रीमन्-नारायण ऋषिः । आदितः पञ्च-दशर्चाम् अनुष्टुप्-छन्दः,
तिसृणां त्रिष्टुप्-छन्दः । परमात्मा भगवान् नारायणो देवता । "पुरुष एवेदं सर्वम्" इति बीजम् ।
"एतावानस्य महिमे"ति शक्तिः । "नान्यः पन्था अयनाय विद्यत" इति कीलकम् । श्री-भगवत्-
समाराधनार्थं विनियोग

इत्य् अनुसन्धाय

ओं पुरुषाय हृदयाय नमः । ओं महा-पुरुषाय शिरसे स्वाहा । ओं ब्रह्म-पुरुषाय
शिखायै वौषट् । ओं विष्णु-पुरुषाय कवचाय हुम् । ओम् ईश्वर-पुरुषाय नेत्र-द्वयाय
वौषट् । ओम् आद्यपुरुषाय वीर्यायास्त्राय फड्

इति षड्-अङ्ग-न्यासं कृत्वा

प्रथमां विन्यसेद् वामे द्वितीयां दक्षिणे करे ।
तृतीयां वाम-पादे तु चतुर्थीं दक्षिणे पदे ॥
पञ्चमीं वाम-जङ्घायां दक्षिणस्यां तद्-उत्तराम् ।
सप्तमीं वाम-कट्यां तु दक्षिणस्यां तथा ऽष्टमम् ॥
नवमीं नाभि-मध्ये तु दशमीं हृदि विन्यसेत् ।
एकादशीं कण्ठ-देशे द्वादशीं वाम-बाहुके ॥
त्रयोदशीं दक्षिणे तु तथा ऽऽस्ये तु चतुर्-दशीम् ।
अक्ष्णोः पञ्च-दशीं न्यस्य न्यसेन् मूर्धनि षोडशीम् ॥

इत्य् उक्त-प्रकारेण ऋचो विन्यसेत् । इति संहार-न्यासः । वैपरीत्येन सृष्टि-न्यासः । नाभ्य्-आदि-
पादान्तं न्यस्त्वा शिरः-प्रभृति-हृदयान्तम् इति स्थिति-न्यासः ।

[[99]]

ध्यानम्॥

गो-क्षीराभं पुण्डरीकासन-स्थम्
चक्राब्जाद्यैर् भूषणैर् भूषिताङ्गम् ।
विष्णुं ध्यात्वा श्री-धराश्लिष्ट-पार्श्वम्
सूक्तेनैनं पौरुषेणार्चयीत ॥

इति ध्यात्वा "पुरुष-सूक्तम्" यथा-शक्ति जपेत् ।

श्री-सूक्त-मन्त्रस्य ऋष्यादि③

अस्य श्री-सूक्त-मन्त्रस्य श्रीर् आनन्द-कर्म-चिकलीतेन्द्रिसुताश् च ऋषयः ।
अनुष्टुप्-बृहती-त्रिष्टुप्-प्रस्तार-पङ्क्तयश् चेति छन्दांसि । श्र्य-अग्नी देवते ।
तत्राग्निर् इति नारायणो भगवान् उच्यते । हिरण्य-वर्णाम् इत्य् ऋग्-बीजं
कांसोस्मीत्य् ऋक्-छक्तिः । श्री-महा-लक्ष्मी-प्रसाद-सिध्य-अर्थे जपे

विनियोगः । श्री-बीजेन कर-शुद्धिं कृत्वा

हिरण्य-वर्णायै श्री-महा-लक्ष्म्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । सुवर्ण-वर्णायै श्री-महा-लक्ष्म्यै
तर्जनीभ्यां नमः । रजतस्रजायै श्री-महा-लक्ष्म्यै मध्यमाभ्यां नमः । चन्द्रायै श्री-महा-
लक्ष्म्यै अनामिकाभ्यां नमः । हिरण्मयायै श्री-महा-लक्ष्म्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
जात-वेदो म आवहायै श्री-महा-लक्ष्म्यै कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः

इत्य् अङ्गुलि-न्यासं कृत्वा

ओं हिरण्य-वर्णायै श्री-महा-लक्ष्म्यै हृदयाय नमः । ओं सुवर्ण-वर्णायै श्री-महा-
लक्ष्म्यै शिरसे स्वाहा । ओं रजतस्रजायै श्री-महा-लक्ष्म्यै शिखयै वौषट् । ओं चन्द्रायै
श्री-महा-लक्ष्म्यै कवचाय हुम् । ओं हिरण्मयायै श्री-महा-लक्ष्म्यै नेत्राय वौषट् ।
जात-वेदो म आवहायै श्री-महा-लक्ष्म्यै वीर्यायास्त्राय फड्

[[100]]

इति षड्-अङ्ग-न्यासं कृत्वा "हिरण्य-वर्णाम्" इति मूर्ध्नि "तां म आवहे"ति नेत्रयोः, "अश्व-
पूर्वाम्" इति कर्णयोः "कांसोस्मिताम्" इति नासिकायां, "चन्द्रां प्रभासाम्" इति मुखे "आदित्य-
वर्णे"ति कण्ठे "उपैतु माम्" इति बाह्वोः, "क्षुत्-पिपासाम्" इति हृदये "गन्ध-द्वाराम्" इति नाभौ
"मनसः कामम्" इति कट्यां "कर्ममेने"ति गुह्ये । "आपः सृजन्त्व्" इत्य् ऊर्वोः, "आर्द्रा
पुष्करणीम्" इति जान्वोः । "आर्द्रा यः करणीम्" इति जङ्घयोः । "तां म आवहे"ति पादयोः
इत्य् अङ्ग-न्यासं कृत्वा श्री-बीजेन व्यापक-न्यासं कुर्यात् ।

अथ ध्यानम्

अरुण-कमल-संस्था तद्-रजः-पुञ्ज-वर्णा
 कर-कमल-घृतेष्टाभीति-युग्माम्बुजा च ।
 मणि-मकुट-विचित्रालङ्कृता-कल्प-जालैः
 भवतु भुवन-माता सन्ततं श्रीः श्रियै नः ॥
 या सा पद्मासन-स्था विपुल-कटि-तटी पद्म-पत्रायताक्षी
 गम्भीरावर्तनाभिस् स्तन-भर-नमिता शुभ्र-वस्त्रोत्तरीया ।
 लक्ष्मीर् दिव्यैर् गजेन्द्रैर् मणि-गण-खचितैः स्नापिता हेम-कुम्भैः
 नित्यं सा पद्म-हस्ता मम भजतु गृहं सर्व-माङ्गल्य-युक्ता ॥
 चतुर्-भुजां सुवर्णाढ्यां पद्म-मध्ये व्यवस्थितां ।
 दक्षिणे ऽभय-हस्तां च वाम-हस्ते वसु-प्रदाम् ॥
 श्वेत-गन्धां शुकां देवीं हेम-पुष्पैर् अलङ्कृताम् ।
 स्व-तेजसा जगज्-जालं ज्वालयन्तीं समन्ततः ॥

[[101]]

पूजयामि महा-लक्ष्मीं सर्व-सौख्य-प्रदायिनीम् ।
 पद्मालये पद्म-हस्ते पद्मास्ये पद्म-सम्भवे
 त्वं मां भजस्व कल्याणि येन सौख्यं भजाम्य् अहम् ॥

इति ध्यात्वा "श्री-सूक्तम्" यथा-शक्ति जपेत् ।

सालग्राम-महा-मन्त्रस्य ऋष्यादि③

श्री-साल-ग्राम-महा-मन्त्रस्य वेद-व्यासो भगवान् ऋषिः । विराट्-छन्दः, साल-ग्रामो
 देवता । प्रणवो बीजं स्वाहा शक्तिः । भोग-मोक्षार्थे विनियोगः

ओं नमो भगवते श्री-विष्णवे श्री-साल-ग्राम-निवासिने श्रीमते सर्वाभीष्ट-प्रदायिने
 सकल-दुरित-निवारणाय साल-ग्रामाय स्वाहा

इति साल-ग्राम-मन्त्रं यथा-शक्ति जपेत् ।

०४ षड्-आसनोपेत-भगवद्-आराधन-प्रयोगः②

ततो भगवद्-यागम् आरभेत ।

भगवान् एव स्व-शेष-भूतेन मया स्वकीयैर् एव कल्याणतमैर् औपचारिक-
 सांस्पर्शिकाभ्यवहारिकैर् भोगैर् अखिल-परिजन-परिच्छदान्वितं स्वात्मानं प्रीतं
 कारयितुम् उपक्रमते

हृद्-यागः ③

हृन्-नालीके विभान्तं शिखि-रवि-शशिनां मध्य-गे भद्र-पीठे
शङ्ख-चक्र-गदां चाभयम् अपि दधतं पाणि-पादैश् चतुर्भिः ।
माला-श्री-वत्स-पीताम्बर-धर-तुलसी-हार-केयूर-मुख्यैः
भान्तं भूषाविशेषैर् मम हृदि कलये मेघ-वर्णं रमेशम् ॥

इति पुण्डरीके भगवन्तं ध्यात्वा

[[102]]

मन्त्रैः कल्पितम् आसनं हिम-जलैस् स्नानं च दिव्याम्बरम्
नाना-रत्न-विभूषितं मृगमद-आमोदान्वितं चन्दनम् ।
जाती-चम्पक-केतकी-विकसितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव-दया-निधे तव कृते सत्-कुक्षये कल्प्यताम् ॥
छत्रं चामरयोर् युगं व्यजनिकामा दर्शनं मर्दलं
भेरी-शङ्ख-मृदङ्ग-ताल-घनिकां नृत्यं च गीतं तथा ।
साष्टाङ्गं प्रणतोऽस्म्य अहं पद-युगं चेतस् समस्तं मया
सङ्कल्पेन समर्पितं तव कृते सत्-कुक्षये कल्प्यताम् ॥
सौवर्णे स्थालि-वर्ये मणि-गण-खचिते गो-घृताक्तान् सुपक्वान्
भक्ष्यान् भोज्यांश् च लेह्यान् परमम् अपि हविश् शोष्यम् अन्यन् निधाय ।
नाना-शाकैर् उपेतं स-दधि-मधु-घृत-क्षीर-पानीय-मिश्रम्
ताम्बूलं चात्मने ऽस्मिन् प्रतिदिवसम् अहं मानसं कल्पयामि ॥

इत्य् अभ्यर्च्य

भगवन् पुण्डरीकाक्ष
हृद्य् आगन्तु मया कृतम् ।
आत्मसात् कुरु देवेश
बाह्वीस् त्वां सम्यग् अर्चये ॥

इति प्रार्थ्य,

[[103]]

द्रव्य-संस्कारः ③

अथ याग-सम्भारान् सम्भृत्य प्रक्षाल्यात्मनो दक्षिण-पार्श्वं न्यसेत् ॥ "आपो अस्मान्" इति ऋचा जल-भाजनं प्रक्षाल्य आत्मनो वाम-पार्श्वं धान्योपरि आधार-शक्त्य्-आदि-पृथिव्य्-अन्तं ध्यात्वा अभ्यर्च्य "इमं मे गङ्गा" इति ऋचा निधाय "समुद्र-ज्येष्ठा" इति मन्त्रेण "शन्नो देवीर्" इति ऋचा च जलम् उत्पूर्य "अञ्जन्ति त्वे"ति सूक्तेन पुष्पाणि गृहीत्वा "आयनेत" इति मन्त्रेण प्रक्षिप्य "अर्वाची सुभगे"ति द्वाभ्यां तुलसीं गृहीत्वा मूल-मन्त्रेण निक्षिप्य गायत्र्या कुशं निक्षिप्य "यवो ऽसी"त्य् अक्षतान्-निक्षिप्य श्री-सूक्तेन "गन्ध-द्वाराम्" इति मन्त्रेण च गन्धान् निक्षिप्य "ओषधयस् सोम-राज्ञीर्" इति श्वेत-सर्षपान् निक्षिप्य "काण्डात् काण्डाद्" इति दूर्वाग्राणि "स हि रत्नानी"ति रत्नानि, "हिरण्य-रूपस् स हिरण्य-सदृक्" इति ऋचा हिरण्यं च निक्षिपेत् । ततस् तुलस्या मूल-मन्त्रेणाभ्यर्च्य धूपं दत्त्वा "विश्वानि न" इति दीपं दद्यात् । वायु-बीजेन विशोध्य वह्नि-बीजेन दग्ध्वा अमृत-बीजेन दिव्यामृत-तोयम् उत्पाद्य हुं कारेण प्रबुद्धानि कृत्वा फट् कारेणाभिमुखानि कृत्वा ऽभिमन्त्र्यास्त्र-मन्त्रेण रक्षां कृत्वा "आपो वा इदं", "इमं मे गङ्गे", "गङ्गे च यमुने चै"वेति मन्त्रैर् अभिमन्त्र्य

अमृते अमृताह्वये अमृतोद्भवे ऽमृत-प्रदायिनि अमृतं सावय सावय अमृत-प्रदायिनि स्वाहा

इत्य् अमृत-मन्त्रेण "स्वीं सुरभ्यै नमः" इति सुरभि-मन्त्रेण च सुरभि-मुद्रां प्रदर्श्य अन्यानि पूजा-द्रव्याणि दक्षिण-पार्श्वं निहितानि शोषण-दहन-प्लावनदिभिर् विशोध्य देवस्यात्मनो वा पुरतः पीठे क्रमेण भगवतः पार्श्वद् आग्नेयादिषु कोणेषु अर्घ्य-पाद्याचमनीय-पात्राणि मध्ये शुद्धोदक-पात्रं च निधाय विष्णु-गायत्र्या अस्त्र-मन्त्रेण च प्रक्षाल्य पूर्ववच्-छोषण-दहन-प्लावनानि कृत्वा तुलसीं तिल-गन्ध-पुष्पाणि च हृदय-मन्त्रेण निधाय कुम्भ-स्थ-तोयेन वेदादि-मन्त्रैर् हृदय-मन्त्रेण च तानि पूरयित्वा मूल-मन्त्रेणाभिमन्त्र्य अर्घ्य-पात्रे गन्ध-पुष्प-कुशाग्राक्षत-फल-तिल-सिद्धार्थान् निक्षिप्य पाद्य-पात्रे दूर्वा विष्णु-पर्णी श्यामाकं पद्मं तिलम् अक्षतं च निक्षिप्य आचमनीय-पात्रे एला-लवङ्ग-तक्कोल-कर्पूर-चन्दन-लामज्जा-जाति-पुष्पाणि निक्षिप्य

[[104]]

स्नानीय-पात्रे कोष्ठ-मासि-हरिद्रा-द्वय-मुरा-शैलेय-चम्पक-वचाकच्चोलमुस्ता[[??]] इति सर्वौषधीः गन्ध-रत्न-फल-बीज-कुश-तिलाक्षत-दधि-क्षीर-घृतानि च निक्षिप्य सर्वत्र पूर्ववच्-छोषण-दहन-प्लावनानि कृत्वा सुरभि-मुद्रां प्रदर्श्य अर्घ्य-पात्रं दक्षिण-पाणिना स्पृशन् पवित्र-मूल-मन्त्राभ्याम् अभिमन्त्र्य "ओं नमो भगवते" इत्य् अर्घ्यं परिकल्पयेत् । अन्यानि मूल-मन्त्रेणाभिमन्त्र्य

ओं नमो भगवते पाद्यं परिकल्पयामि

इति पाद्यम्,

ओं नमो भगवते आचमनीयं परिकल्पयामि

इत्य् आचमनीयम्,

ओं नमो भगवते स्नानीयं परिकल्पयामि

इति स्नानीयम्,

ओं नमो भगवते शुद्धोदकं परिकल्पयामि

इति शुद्धोदकं परिकल्प्य पात्राणि धूप-दीपैर् अभ्यर्च्य, अस्त्र-मन्त्रेण रक्षां कृत्वा तत्-तद्-द्रव्य-युतान् सर्वान् अभिषेक-कलशान् यथावकाशं निधाय द्वादशार-चक्र-मध्य-स्थं भासमानं भास्करं दक्षिण-हस्त-तले ध्यात्वा तद्-रश्मिभिः सर्वाणि पूजा-द्रव्याणि अभिषेक-द्रव्याणि च दग्धानि भस्मी-भूतानि ध्यात्वा वाम-हस्ते षोडश-दल-युक्त-विकसित-पद्मे अमृतमय-रश्मिभिः हृदि यन्त्रं चन्द्रं ध्यात्वा तद्-उत्थितैर् अमृतांशुभिस् सिक्तानि पुनर् जातानि याग-योग्यानि ध्यात्वा ताभ्यां सर्वाणि पात्राणि स्पृष्ट्वा विष्णु-गायत्र्या ऽभिमन्त्र्य सुरभि-मुद्रां प्रदर्श्य तद्-उत्थेन अमृतेन पूरितानि विचिन्त्य पश्चोपनिषन्-मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ।
ततो घण्टां पुरतो निधाय परिशोध्य शोषणादीनि कृत्वा पूजयेत् ।

आदौ द्वादशारं चक्रं विचिन्त्य तत्र अरेषु द्वादशात्मानं रविं विचिन्त्य तद्-उपरि षोडशारं चक्रं विचिन्त्य तत्र षोडश-कलात्मकम् अमृतांशु-चन्द्रमसं विचिन्त्य तेष्व् अरेषु षोडश-स्वराक्षरान् विचिन्त्य तद्-उपरि चतुर्-विंशति--दल-पद्मं ध्यात्वा दलेषु ककारादि-भकारान्तं चतुर्-विंशति-सङ्ख्यं वर्ण-गणं चतुर्-विंशति-तत्त्व-सङ्घं च पद्म-किञ्जल्के मकार-जीव-तत्त्वं च ध्यात्वा कर्णिकायाम् ईश्वरं ध्यात्वा सर्वेषु वृत्त-क्षेत्रेषु नभस्वन्तं ध्यात्वा घण्टाया वदने मुक्ता-हाराश्रितं शङ्खं यकारं च ध्यात्वा शङ्खे प्रणवं ध्यात्वा पर्वसु सप्तसु रेफादि-हकारान्तान् वर्णान् ध्यात्वा तद्-उपरि पर्वणि अकारे पतत्रि-राजं प्राणाधिदैवतं ध्यात्वा घण्टा-दण्डाश्रितां विद्यां ध्यात्वा घण्टाम् अधो-मुखं ब्रह्माण्डं ध्यात्वा कर्णिका-मध्ये शब्द-ब्रह्ममयीं देवीं ध्यायेत् ।

[[105]]

पद्मे विचिन्तये देवीं वर्गाष्टक-भुजान्विताम् ।
मुख्ये हस्त-चतुष्के तु लाञ्छनं कमलादिकम् ॥
स्फाटिकं चाक्ष-सूत्रं च तथा विज्ञान-पुस्तके ।
अक्षयं वरदं चैव धारयन्तीं सित-प्रभाम् ॥
पद्मासनेनोपविष्टां पद्म-पत्रायतेक्षणाम् ।
पद्म-पत्र-प्रतीकांशां पद्म-माला-विभूषिताम् ॥
सिता-भरण-सञ्छन्नां पीत-वस्त्र-विवेष्टिताम् ।
मन्त्रौघम् उद्गिरन्तीं च मन्त्र-ज्वाला-प्रभान्विताम् ॥
देवैस् संस्तूयमानां च ब्रह्माद्यैर् ब्रह्म-वेदिभिः ।
ऋषिभिर् मुनिभिस् सिद्धैः लोकानुग्रह-कारिभिः ॥
नृत्यमानां स्मरेत् सम्यक् पूजा-काले सदैव हि ।

इति ध्यात्वा, अर्घ्य-गन्ध-पुष्प-धूप-दीपैर् अभ्यर्च्य, देवस्य आह्वाने अर्घ्य-धूप-दीपदाने नैवेद्य-दाने विष्वक्सेनार्चने पीठार्चने द्वार-स्थ-देवार्चने बलि-प्रदान-काले च घण्टां नादयेत् ।

[[106]]

धूप-पात्रस्य मूले क्षमा-तत्त्वं कमले जल-तत्त्वं चक्रे तेजस्-तत्त्वं किङ्किणी-जाले वायु-तत्त्वं कर्णिकोपरि गमन-तत्त्वं च ध्यात्वा अर्चयेत् । ततो ऽस्त्र-मन्त्रेण शङ्खं प्रक्षाल्य हृदय-मन्त्रेण शङ्खे गन्ध-पुष्पाक्षतान् निक्षिप्य मातृका-वर्णं प्रतिलोमम् उच्चार्य शिरो-मन्त्रेण जलेन शङ्खम् आपूर्य "मं वह्नि-मण्डलाय दश-कलात्मने नमः" इति शङ्ख-पीठे समभ्यर्च्य "अं सूर्य-मण्डलाय द्वादश-कलात्मने नमः" इति शङ्खं समभ्यर्च्य "उं सोम-मण्डलाय षोडश-कलात्मने नमः" इति शङ्ख-स्थ-जले समभ्यर्च्य "गङ्गे च यमुने चैवे"ति तीर्थ-मन्त्रेण तीर्थम् आदित्य-मण्डलात् शङ्खे समावाह्य पुनः हृदय-कमलाद् विष्णु-मूल-मन्त्रेण तस्मिन् जले समावाह्य

कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ सक्तौ करयोर् इतरेतरम् ।

तर्जनी-मध्यमा ऽनामाः संहता भुग्न-वर्जिताः ॥

मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरि चालिता ।

इत्थं उक्त-प्रकारेण गालिनी-मुद्रां शिखा-मन्त्रेण तस्मिन् जले प्रदर्श्य नेत्र-मन्त्रेण तज्-जलं संवीक्ष्य कवच-मन्त्रेण तत्-तीर्थम् अधो-मुखेन गृहीत्वा तर्जनी-द्वयेन हस्त-द्वयेन परितो भ्रमणं, अवकुण्ठन-मुद्रया समवकुण्ठ्य तत्-तीर्थ-स्थ-देवतां तत्-तन्-मूल-मन्त्र-व्यापकेन सङ्कली-कृत्य मूल-मन्त्रस्याङ्गैर् अङ्ग-न्यासं कृत्वा अस्त्र-मन्त्रेण दश-दिग्-बन्धनं कृत्वा क्षतादि-युतम् अच्युत-स्व-रूपी-कृतं तज्-जलं स्पृशन् मूल-मन्त्रम् अष्ट-वारं जपित्वा तज्-जलं किञ्चिद् उपस्थित-वर्धनी-पात्रे क्षिप्त्वा ऽवशिष्टेन निज-तनुं सम्प्रोक्ष्य पुनर् अप्य् अवशिष्टेन तीर्थ-जलेन त्रि-वारं मूल-मन्त्रम् उच्चरन् गन्ध-कुसुमादीन् सम्प्रोक्षयेत् । तत उद्धरिण्या अर्घ्य-जलम् आदाय तत्र पुष्प-द्वयं निक्षिप्य तत्-पात्रं वाम-हस्ते निधाय दक्षिण-हस्तेन पिधाय घ्राण-समम् उद्धृत्य मूल-मन्त्रेण सप्त-कृत्वो ऽभिमन्त्र्य "ओं नमो भगवत्यै विरजायै" इति विरजाम् आवाह्य अर्घ्यादि-पात्रेषु कुम्भे च किञ्चित् प्रक्षिप्य शेषेण भगवद्-विग्रहं याग-भूमिं पूजा-द्रव्याणि स्वात्मानं च मूल-मन्त्रेण अस्त्र-मन्त्रेण च प्रत्येकं सम्प्रोक्ष्य आसनं परिकल्पयेत् ।

[[107]]

ओम् आधार-शक्त्यै नमः, ओं प्रकृत्यै नमः, ओम् अखिल-जगद्-आधाराय कूर्म-रूपिणे नारायणाय नमः, ओं भगवते अन्-अन्ताय नाग-राजाय नमः ओं भूं भूम्यै नमः,

इति यथा-स्थानं ध्यात्वा प्रणम्य

ओं श्री-वैकुण्ठाय दिव्य-लोकाय नमः, ओं श्री-वैकुण्ठाय दिव्य-जन-पदाय नमः, ओं श्री-वैकुण्ठाय दिव्य-नगराय नमः, ओं श्री-दिव्य-वैकुण्ठाय दिव्य-विमानाय नमः, ओम् आनन्दमयाय दिव्य-मण्डप-रत्नाय नमः,

इति दिव्य-लोक--दिव्य-जन-पद--नगर-विमान-मण्डप-रत्नानि प्रणम्य अस्मिन् "ओम् अन्-अन्तायास्तरणाय नमः", इति आस्तरणं प्रणम्य आग्नेयादि-कोणेषु

ओं धर्माय पीठ-पादाय नमः, ओं ज्ञानाय पीठ-पादाय नमः, ओं वैराग्याय पीठ-पादाय नमः, ओम् ऐश्वर्याय पीठ-पादाय नमः ।

प्राग्-आदि-दिक्षु

ओम् अ-धर्माय पीठ-गात्राय नमः अज्ञानाय पीठ-गात्राय नमः अवैराग्याय पीठ-गात्राय नमः, अन्-ऐश्वर्याय पीठ-गात्राय नमः एभिः परिच्छिन्न-तनुं पीठ-भूतं सद्-आत्मकम् अन्-अन्तं ध्यायामि

इति प्रणम्य प्राग्-ईशान-दिग्-अन्तरे "ऋग्-वेदाय नमः" । प्राग्-वह्नि दिग्-अन्तरे "यजुर्-वेदाय नमः" । वारुण-नैऋति-दिग्-अन्तरे "साम-वेदाय नमः" । वारुणानिल-दिग्-अन्तरे "अथर्वण-वेदाय नमः" । ईशान-सोम-दिग्-अन्तरे "कृत-युगाय नमः" । याम्यानल-दिग्-अन्तरे "त्रेता-युगाय नमः" । यातु-धान-याम्य-दिग्-अन्तरे "द्वापर-युगाय नमः" । सोम-वायु-दिग्-अन्तरे "कलि-युगाय नमः" । एतेषां षोडशानाम् उपरि "काल-चक्राय नमः" । "ओम् अन्-अन्ताय नमः" ।

[[108]]

भगवतः पश्चाद् भागे

सर्व-कार्योन्मुखं विभुम् अन्-अन्तं ध्यायामि

इत्थं अन्-अन्तं प्रणम्य पीठस्योपरि मध्ये

ओं गुण-त्रय-समन्विताव्यक्त-स्व-रूपाय अष्ट-दल-पद्माय नमः ।

इति पद्मं ध्यात्वा दलेषु "ओं सूर्य-मण्डलाय नमः" इति ध्यात्वा केसरेषु "ओं सोम-मण्डलाय नमः" इति ध्यात्वा कर्णिकायाम् "ओं वह्नि-मण्डलाय नमः" इति ध्यात्वा प्राग्-आदि-दलेषु

ओं विमलायै नमः । ओम् उत्कर्षिण्यै नमः । ओं ज्ञानायै नमः ओं क्रियायै नमः । ओं योगायै नमः । ओं प्रभ्व्यै नमः । ओं सत्यायै नमः । ओम् ईशानायै नमः ।

इत्थं अष्ट-शक्तीश् चामर-हस्ताः ध्यात्वा कर्णिका-पूर्व-भागे "ओम् अनुग्रहायै नमः" इत्थं अनुग्रहां चामर-हस्तां ध्यात्वा । "ओं जगत्-प्रकृतये योग-पीठाय नमः" इति कर्णिकायां योग-पीठं ध्यात्वा "ओं दिव्य-योग-पर्यङ्काय नमः" इति तस्मिन् दिव्य-योग-पर्यङ्कं ध्यात्वा

ओं सहस्र-शीर्षाय अन्-अन्ताय नाग-राजाय नमः

इत् अन्-अन्तं नाग-राजं ध्यात्वा "ओम् अन्-अन्ताय नम" इति पुरतः पाद-पीठं ध्यात्वा सर्वाण्य्
आधार-शक्त्य्-आदीनि पाद-पीठान्तानि तत्त्वानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीपैः सम्पूज्य

अन्-अन्त-गरुड-विष्वक्सेनानां स-पीठकेभ्यः पद्मासनेभ्यो नम

इति तत्-तत्-स्थाने स-पीठकानि पद्मासनानि परिकल्प्य सर्व-परिवाराणां तत्-तत्-स्थाने पद्मेभ्यो
नम इति पद्मासनानि परिकल्प्य
सर्वतः पुष्पाक्षतानि विकीर्य

अनुज्ञा ③

सर्वार्थं जलम् उद्धरिण्या ऽऽदाय घ्राण-समम् उद्धृत्य

अस्मद्-गुरुभ्यो नमः । अस्मत्-परम-गुरुभ्यो नमः अस्मत्-सर्व-गुरुभ्यो नमः

इति चतुर्-आवृत्य "ओं भगवते आगच्छतागच्छते"ति भगवत्-पाद-समीपाद्-योग-पीठस्य
पश्चिमोत्तर-दिग्-भागे स्व-गुरून् आवाह्य व्यापक-न्यासं कृत्वा अर्घ्य-गन्ध-पुष्प-धूप-दीपैर्
अभ्यर्च्य, प्रणम्य,

[[109]]

गुरवस् तदीय-गुरवो दिशं तु मम साध्व् अनुग्रहम् ।
युष्मद्-उपजनित-शक्ति-मतिर् हरिम् अर्चयामि गत-भीः प्रसीदत ॥

इत् अनुज्ञाप्य भगवद्-यागम् आरभेत ।

विष्ण्व्-आवाहनादि ③

मन्त्र-योगस् समाह्वानं कर-पुष्पोपदर्शनम् ।
बिम्बोपवेशनं चैव योग-विग्रह-चिन्तनम् ॥
प्रणामश् च समुत्थानं स्वागतं पुष्पम् एव च ।
सान्निध्य याचनं चेति तत्राह्वानस्य स-क्रिया ॥

इत् उक्त-प्रकारेणावाहनं कुर्यात् । यथा, तिष्ठन् उद्धरिण्या अर्घ्य-जलम् आदाय तत्र पुष्प-द्वयं
निक्षिप्य धारण-विधारणे कृत्वा हृदय-समम् उद्धृत्य मूल-मन्त्रं चतुर्-आवृत्य "ओं भगवन्
आगच्छागच्छे"त् उक्त्वा

ओं पूर्विकाः व्यस्तास् समस्ताश् च व्याहृतीर् उक्त्वा वेदादीन् उक्त्वा कल्पिते नाग-
भोगे समासीनं भगवन्तं नारायणं पुण्डरीक-दलामलाक्षं किरीट-केयूर-हार-मकुट-
कटकादि--सर्व-भूषण--भूषितम् आकुञ्चित-दक्षिण-पादं प्रसारित-वाम-पादं

जानुन्य अस्त-दक्षिण-भुजं नाग-भोगे विन्यस्त-वाम-भुजम् ऊर्ध्व-भुज-द्वयेन शङ्ख-
चक्र-धरं सर्वेषां सृष्टि-स्थिति-प्रलय-हेतु-भूतम् अञ्जनाभं, विराजमानं, चकासतं,
उदग्र-प्रबुद्ध-स्फुरद्-अपूर्वाचिन्त्य-परम-सत्त्व-पञ्च-शक्तिमय-विग्रहं ध्यायामि

इति ध्यात्वा, "सव्यं पादं प्रसार्ये"ति श्लोकम् उक्त्वा "भगवन्-नारायणाभिमुखो भवे"ति मूल-
मन्त्रेण प्रार्थयेत् । इति मन्त्र-योगः ।

ओं परम-धामावस्थित-मद्-अनुग्रहाभिमत-योगाद्य-अवतार
एह्य एह्य अभिमत-सिद्धि-मन्त्र-शरीरे ।
"ओं नमो नमः" ।
"ओं षौ नमः" पराय परमेष्ठ्य-आत्मने वासुदेवाय नमः

[[110]]

इत्य् उद्योगं ध्यात्वा मूल-मन्त्रेण ब्रह्म-रन्ध्रेण स्वात्मनि प्रविष्टं ध्यात्वा

ओं यां नमः पराय पुरुषात्मने सङ्कर्षणाय नम

इति दक्षिण-नासया निर्गम्य हस्त-पात्र-जले प्रवेशं ध्यायेत् । इदम् एव समाह्वानम् ।

ओं रां नमः पराय विश्वात्मने प्रद्युम्नाय नम

इति पात्रं बिम्बस्य मुखे दर्शयित्वा पुरतस् स्थाप्य एकं पुष्पं स-जलं स-तेजो हस्तेनादाय देवस्य
दर्शयेत् । एतत् कर-पुष्पोपदर्शनम् ।

इज्या-कालस् तृतीयो ऽयं अह्नो ऽशस् समुपस्थितः ।
सम्भृताश् चैव सम्भाराः कल्पितान्य् आसनानि च ॥
आयातु भगवान् देवः सर्व-सम्पत्-करः प्रभुः ।
अच्युतो मद्-ग्रहार्चायां मद्-अनुग्रह-काम्यया ॥
आवहयामि लक्ष्मीशं परमात्मानम् अव्ययम् ।
आतिष्ठताम् इमां मूर्तिं मद्-अनुग्रह-काम्यया ॥
श्रिया सार्धं जगन्-नाथो देव्या नारायणः प्रभुः ।

ओं वां नमः पराय निवृत्य-आत्मने अनिरुद्धाय नम

इति भगवन्-मूर्ध-प्रभृति-पादान्तं पुष्प-जलाभ्याम् अभिषिच्य बिम्बे प्रवेशं भावयेत् । एतद्
बिम्बोपवेशनम् ॥ अन्यत्-पुष्पम् आदाय

ओं लां नमः पराय सर्वात्मने नारायणाय नम

इत्य् उक्त्वा

प्रणवेन ब्रह्म-रन्ध्रं पिधाय शेषं प्रक्षिप्य सङ्कली-करण-न्यासं मूल-मन्त्रेण व्यापक-
न्यासं द्वादशाङ्ग-न्यासं च कुर्यात् ।

इति योग-विग्रह-चिन्तनम् ॥ मूल-मन्त्रेण प्रणामोत्थाने कुर्यात् ।

[[111]]

ब्रह्माद्यास् सकला देवा यन्-नः स्मर्तुम् अपीश्वराः
स एष भगवान् अद्य मम प्रत्यक्षातां गतः ।
स्वागतं भगवन् अद्य मां तारयितुम् आगतः ।
धन्यो ऽस्म्य् अगृहोतो ऽस्मि कृतार्थो ऽस्मि कृपा-निधे ॥

इति भगवते स्वागतं निवेदयेत् । मूल-मन्त्रेण भगवत्-पादयोः पुष्प-प्रदानं कुर्यात् ।

ओं ज्ञानाय हृदयाय नमः । सन्निधत्स्व भगवन्

इति भगवन्-मूर्ध्नि अर्घ्य-जलं पुष्पेण प्रदाय शेषं निरस्य

ओं नां बलाय कवचाय हुम् । सन्निधत्स्व भगवन्

इति पुष्पेणार्घ्य-जलं भगवन्-मूर्ध्नि प्रदाय शेषं निरस्य

ओं यं तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । ओं भगवन् यावद्-आराधन-समाप्ति-सान्निध्यं भजस्व

इति पुष्पेणार्घ्य-जलं भगवन्-मूर्ध्नि प्रदाय शेषं निरस्येत् । एवम् आवाहनाङ्गं मुख्यार्घ्य-त्रयं प्रदाय

--

सान्निध्यं कुरु देवेश सर्वदा सर्व-काम-द ।
सर्व-मन्त्र-क्रिया-भक्ति-श्रद्धा-हानिं सह प्रभो ॥
श्री-भू-नीला-समेतस् त्वं वन-माला-विभूषणैः ।
श्री-वत्स-कौस्तुभोरस्कं कृपां कुरु मयि प्रभो ॥

भगवन् यावद्-आराधन-समाप्ति-सान्निध्यं भजस्व

इति सान्निध्य-याचनं कुर्यात् । इति भगवन्तम् आवाह्य

[[112]]

"ओं श्रीं श्रियै नमः" इति भगवद्-दक्षिण-वक्षसि श्रियं ध्यात्वा "ओं भूं भूम्यै नमः" "ओं नीं
नीलायै नमः" इति वाम-वक्षसि भूमिं नीलां च ध्यात्वा भगवच्-छिरो-नासाग्र-हृदय-गुह्य-पादेषु
पञ्चोपनिषन्-मन्त्रान् विन्यस्य प्रणव-सम्पुटित-मूल-मन्त्राक्षराणां स्थिति-न्यासं कृत्वा

ओं पद्माय नमः । ओं गदायै नमः । ओं सुदर्शनाय नमः । ओं पाञ्च-जन्याय नमः ।

इति तत्-तत्-स्थानेषु विन्यस्य

ओं किरीटाय नमः । ओं श्री-वत्साय नमः । ओं कौस्तुभाय नमः । ओं वन-मालायै नमः ।

इति शिरो-वक्षो-दक्षिण-भाग-मध्योभय-पार्श्वेषु विन्यस्य

ओं श्रियै नमः । ओं पुष्ट्यै नमः । ओं सरस्वत्यै नमः । ओं निद्रायै नमः । ओं कान्त्यै नमः । ओं पृथिव्यै नमः । ओं वैनतेयाय नमः ।

इति तत्-तत्-स्थानेषु विन्यस्य एवं न्यस्तानां गन्ध-पूष्प-धूप-दीपैर् अभ्यर्च्य नमः कृत्वा

आवाहिनी स्थापिनी च सन्निधिस् सन्निरोधिनी ।
सम्मुखं चावकुण्ठं च पाशाङ्कुश-गरुत्मताम् ॥
प्रार्थना-योनि-मुद्रा च महा-मुद्रा तथैव च ।
मूल-मुद्रा च तत्रैव दर्शयेत् तास् त्रयोदश ॥

इत् उक्त-प्रकारेण मुद्रां दर्शयेत् । हस्ताभ्याम् अञ्जलिं कृत्वा अनामिका-मूल-पर्वणोर् अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत् । इयम् आवाहिनी मुद्रा । इयम् अधो-मुखी चेत् स्थापिनी मुद्राः । उच्छिङ्गाङ्गुष्ठ-मुष्ट्योः संयोगः सन्निधापिनी । अन्तः-प्रवेशिताङ्गुष्ठ-मुष्ट्योः संयोगः सन्निरोधिनी । मुष्टि-द्वय-स्थिताङ्गुष्ठौ परस्परं सम्मुखौ संश्लिष्टाव् उच्छ्रितौ करौ कुर्यात् । इयं सम्मुखी मुद्रा । प्रसृताङ्गुलिकौ मिथ-श्लिष्टौ सम्मितौ हस्तौ स्व-हृदये कुर्यात् । सेयं प्रार्थना-मुद्रा । इति षण्-मुद्राः प्रदर्श्य,

आवाहितो भव, स्थापितो भव, सन्निहितो भव, सन्निरुद्धो भव, सम्मुखो भव,
प्रार्थिताभीष्ट-प्रदो भव

[[113]]

इति ध्यात्वा,

मुद्राः ④

कनिष्ठके मिथो बद्ध्वा अनामिके तर्जनीभ्यां बद्ध्वा ऊर्ध्वगयोश् शिष्टयोर् दीर्घयोर् मध्यमयोर् अङ्गुल्योर् अधः अङ्गुष्ठाग्र-द्वयं न्यसेत् । सेयं योनि-मुद्रा ।

हस्तौ विमुखौ कृत्वा कनिष्ठिके ग्रथयित्वा तर्जन्यौ शिष्टे कृत्वा तुण्डवद् ध्यात्वा अङ्गुष्ठौ प्रलम्बौ पादौ ध्यात्वा द्वे चञ्चले मध्यमानामिके द्वौ पक्षौ भावयेत् । एषा गरुड-मुद्रा ।

वाम-मुष्टेर् मध्यमां दक्षिण-मुष्टि-गृहीतां कृत्वा तर्जनीं प्रसारितां कुर्यात् । सेयम् अङ्कुश-मुद्रा ।

वाम-मुष्टि-स्थ-तर्जन्या दक्षिण-मुष्टि-स्थ-तर्जनीं संयोज्य अङ्गुष्ठाग्राभ्यां सव्य-तर्जनीं स्पृशेत् । सैषा पाश-मुद्रा ।

अधो-मुखेन गृहीत-तर्जनीर् द्वयेन हस्त-द्वयेन परितो भ्रमणं अवकुण्ठन-मुद्रा ।

सम्मुखौ सुश्लिष्टौ सुप्रसारितौ करौ कृत्वा मध्यमाङ्गुल्योः पृष्ठे मूलतो विपर्यस्ते ऽनामिके तर्जनी-मूलयोर् न्यस्य तर्जनीभ्याम् अनामिकाग्रे निगृह्य मध्यमयोर् अग्रे श्लेषयित्वा अन्योन्यं पृष्ठतो लग्नं तल-मध्ये उन्नतं कनिष्ठा-युगलं कृत्वा अङ्गुष्ठाग्र-द्वयं मध्यमयोर् अग्र-पर्व-गं कुर्यात् । सैषा महा-योनि-मुद्रा ।

इयम् एव महा-मुद्रेति च उच्यते ।

पूज्य-तत्-तत्-देवता-मुद्रा-मूल-मुद्रेत्य् उच्यते ।

हृदये शिरसि चोर्ध्व-गः सम्पुटाञ्जलिः प्रमाण-मुद्रेत्य् उच्यते । एषैव वासुदेवादि-चतुर्-विंशति-मूर्तीनां मीनादि-मूर्तीनाम् अन्यासां भगवन्-मूर्तीनां मुद्रेत्य् उच्यते ।

भगवद्-आराधने एता मुद्राः प्रदर्शयेत् ।

श्र्य-आद्य-आवाहनम्③

ततः श्रियम् आवाहयेत् । यथा, उद्धरिण्या अर्घ्य-जलम् आदाय तत्र पुष्प-द्वयं निक्षिप्य धारण-विधाने हृदय-समम् उद्धृत्य "ओं श्रीं श्रियै नमः" इति मूल-मन्त्रं चतुर्-आवृत्य "भगवति आगच्छ आगच्छ" इति

भगवतो वक्ष-स्थलात् भगवद्-दक्षिण-पार्श्वे श्रियम् आवाहयामि

"ओं भूः श्रियम् आवाहयामि" इत्य् एवम् ओं पूर्विका-व्यस्तास् समस्ताश् च व्याहृतीर् उक्त्वा "हिरण्य-वर्णा हरिणीम्" इत्य् आदि "पद्म-वर्णा तामिहोपह्वये श्रियम्" इत्य् अन्तम् उक्त्वा "गन्ध-द्वाराम्" इत्य्-ऋचं चोक्त्वा श्रियम् आवाह्य,

[[114]]

पार्श्वे दक्षिणतो विष्णोः देवीं कमल-लोचनाम्
तरुणीं सुकुमाराङ्गीं सर्व-लक्षण-शोभिताम् ।
दुकूल-वस्त्र-संवीतां सर्वाभरण-भूषिताम्
तप्त-काञ्चन-सङ्काशां पीनोन्नत-पयो-धराम् ॥
रत्न-कुण्डल-संयुक्तां नील-कुन्तल-शीर्षजाम् ।

दिव्य-चन्दन-लिप्ताङ्गीं दिव्य-पुष्पावतंसकाम् ॥
स्मित-वक्त्रां श्रियं देवीं चिन्तये ऽभीष्ट-दां सदा ।

इति विग्रह-ध्यानं कृत्वा,

ओं परम-धामावस्थिते मद्-अनुग्रहाभिमत-योगोद्यतावतारे
एह्य एह्य अभिमत-सिद्धिद-मन्त्र-शरीरे
ओं नमो नमः
ओं श्रीं श्रियै नम

इत् उद्योगं ध्यात्वा "ओं श्रीं श्रियै नम" इति ब्रह्म-रन्ध्रेण स्वात्मनि प्रविष्टां ध्यात्वा
"ओं श्रीं श्रियै नम" इति पुनः दक्षिण-नासया निर्गमय्य पात्र-प्रवेशं भावयित्वा
"ओं श्रीं श्रियै नम" इति पात्रं बिम्बस्य मुखे दर्शयित्वा
पुरतः स्थाप्य
एकं पुष्पं स-जलं स-तेजो-हस्तेनादाय देव्या, दर्शयित्वा

"ओं श्रीं श्रियै नम" इति मूर्ध-प्रभृति-पादान्तं पुष्प-जलाभ्याम् अभिषिच्य पात्रात् बिम्बे प्रवेशं
भावयित्वा पुष्पं निरस्य अन्यत् पुष्पम् आदाय "ओं श्रीं श्रियै नम" इति ब्रह्म-रन्ध्रं पिधाय शेषं
प्रक्षिप्य सङ्कली-करण-न्यासं पञ्चोपनिषन्-न्यासं मूल-मन्त्रेण व्यापक-न्यासं द्वादशाङ्ग-न्यासं
च कृत्वा

"ओं श्रीं श्रियै नमः" इति प्रणामोत्थाने कृत्वा स्वागतं निवेदयित्वा "श्रीं श्रीं श्रियै नम" इति
पादयोः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा "ओं ज्ञानाय हृदयाय नम" इति सन्निधत्स्व भगवतीत्य् आदिना
मुख्यार्ध्य-त्रयं दत्त्वा भगवति "यावद् आराधन-परिसमाप्ति-सान्निध्यं भजस्वे"ति सान्निध्य-याचनं
कृत्वा आवाहिन्य्-आदि-त्रयो-दश-मुद्रां दर्शयेत्।

[[115]]

करौ संहतौ सम्मुखौ उन्नताङ्गुली-कृत्वा अङ्गुष्ठौ तावन्तः प्रवेश्य मिलितौ कुर्यात् । एषा पद्म-मुद्रा ।
सर्वासां श्र्य-आदि-देवीनाम् इति मूल-मुद्रां दर्शयित्वा

ओं श्रां ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं श्रीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं श्रूं शक्त्यै
शिखायै वौषट् । ओं श्रीं बलाय कवचाय हुम् । ओं श्रीं तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । ओं
श्रः वीर्यायास्त्राय फट् ।

इति श्रियः तत्-तत्-स्थानेषु विन्यस्य, एवं "भूं भूम्यै नमः" "ओं नीं नीलायै नमः" इति मन्त्र-
द्वयेन भूमिं नीलाञ् च तत्-तत्-स्थाने आवाह्य पद्म-मुद्रां दर्शयित्वा

ओं भां ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं भीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं भूं शक्त्यै
शिखायै वौषट् । ओं भैं बलाय कवचाय हुम् । ओं भौं तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । ओं
भः वीर्यायास्त्राय फट् ।

इति भूम्याः तत्-तत्-स्थानेषु विन्यस्य,

ओं नां ज्ञानाय हृदयाय नमः । ओं नीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । ओं नूं शक्त्यै शिखायै
वौषट् । ओं नैं बलाय कवचाय हुम् । ओं नौं तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । ओं नः
वीर्यायास्त्राय फट् ।

इति नीलायाः तत्-तत्-स्थानेषु विन्यसेत् ।

[[116]]

अलङ्कारादि-कल्पनम् ③

ओं किरीटाय मकुटाधिपतये नम

इत् उपरि भगवतः पश्चिम-पार्श्वे चतुर्-भुजं चतुर्-वक्त्रं कृताञ्जलि-पुटं मूर्ध्नि भगवत्-किरीट-
धरं किरीटाख्यं दिव्य-भूषणं प्रणम्य, एवम् एव

ओं किरीट-मालायै आपीडात्मने नमः

इत् आपीडकं तथैव पुरतः प्रणम्य,

ओं दक्षिण-कुण्डलाय मकरात्मने नम

इति दक्षिण-कुण्डलं दक्षिणतः प्रणम्य,

ओं वाम-कुण्डलाय मकरात्मने नम

इति वाम-कुण्डलं वामतः प्रणम्य,

ओं वैजयन्त्यै वन-मालायै नम

इति वैजयन्तीं पुरतः प्रणम्य,

ओं श्रीमत्-तुलस्यै नमः

इति तुलसी-देवीं पुरतः प्रणम्य

ओं हाराय सर्वाभरणाधिपतये नम

इति हारात्मानं पुरतः प्रणम्य

ओं श्री-वत्साय श्री-निवासाय

नम इति श्री-वत्सं पुरतः प्रणम्य

| ओं श्री-कौस्तुभाय सर्व-रत्नाधिपतये नम

इति कौस्तुभं रत्नाधिपतिं पुरतः प्रणम्य,

| ओं काञ्ची-गुणोज्ज्वलाय दिव्य-पीताम्बराय नम

इति पीताम्बरं पुरतः प्रणम्य

| ओं सर्वेभ्यो भगवद्-दिव्य-भूषणेभ्यो नम

इति सर्व भूषणानि पुरतः प्रणम्य

| ओं श्री-सुदर्शनाय हेति-राजाय नम

इति सुदर्शनात्मानं रक्त-वर्णं रक्त-नेत्रं द्वि-भुजं कृताञ्जलि-पुटं भगवन्तम् आलोकयन्तं तद्-दर्शनानन्दोपबृंहित-मुखं भगवच्-चक्रं मूर्ध्नि धारयन्तं दक्षिणतः प्रणम्य

| ओं नन्दकाय खड्गाधिपतये नम

इति नन्दकात्मानं शिरसि खड्गं धारयन्तं तथैव प्रणम्य तथैव "ओं पद्माय नम" इति पद्मात्मानं शिरसि पद्मं धारयन्तं प्रणम्य

| ओं पाञ्च-जन्याय शङ्खाधिपतये नम

इति शङ्खात्मानं सित-वर्णं रक्त-नेत्रं द्वि-भुजं कृताञ्जलि-पुटं शिरसि शङ्खं धारयन्तं वामतः प्रणम्य, तथैव

| ओं कौमोदक्यै गदाधिपत्यै नम

इति गदा-देवीं प्रणम्य तथैव

| ओं शार्ङ्गाय चापाधिपतये नम

इति शार्ङ्गात्मानं प्रणम्य, तथैव

| ओं सर्वेभ्यो भगवद्-दिव्यायुधेभ्यो नम

इति सर्वाणि भगवद्-आयुधानि परितः प्रणम्य,

| ओं सर्वाभ्यो भगवत्-पादारविन्द-संवाहिनीभ्यो नम

इति दिव्य-पादारविन्द-संवाहिनीः समन्ततः प्रणम्य

[[117]]

ओं अन्-अन्ताय नाग-राजाय नम

इति पृष्ठतो ऽन्-अन्तं भगवन्तं चतुर्-भुजं हल-मुसल-धरं कृताञ्जलि-पुटं फणा-मणि-सहस्र-
मण्डितोत्तमाङ्गं भगवद्-दर्शनानन्दोपबृंहित-सर्वाङ्गं ध्यात्वा प्रणम्य,

ओं सर्वेभ्यो भगवत्-परिजनेभ्यो नम

इति असङ्ख्येय-परिजनान् समन्ततः प्रणम्य,

ओं भगवत्-पादुकाभ्यां नम

इति पादुके पुरतः प्रणम्य

ओं सर्वेभ्यो भगवत्-परिच्छदेभ्यो नम

इति परिच्छदान् समन्ततः प्रणम्य "ओं वै वैनतेयाय नम" इत्य् अग्रतो भगवन्तं वैनतेयम् आसीनं
द्वि-भुजं कृताञ्जलि-पुटं ध्यात्वा प्रणम्य,

सत्याय नमः । विहगेशाय नमः । ताक्ष्याय नमः । सुत्रर्णाय नमः । गरुडाय नमः

इति वैनतेयस्य पञ्च-मूर्तिं ध्यात्वा प्रणम्य "ओं विष्वक्सेनाय नम" इति भगवतः प्राग्-उत्तरे पार्श्वे
दक्षिणाभिमुखं भगवन्तम् आसीनं विष्वक्सेनं चतुर्-भुजं शङ्ख-चक्र-धरं कृताञ्जलि-पुटं नील-
मेघ-निभं ध्यात्वा प्रणम्य

ओं गं गजाननाय नमः ओं जं जयत्सेनाय नमः ओं हं हरि-वक्त्राय नमः ओं कं
काल-प्रकृति-संज्ञिकाय नमः ओं सर्वेभ्यो भगवद्-विष्वक्सेन-परिजनेभ्यो नम

इति श्रीमद्-विष्वक्सेन-परिजनान् प्रणम्य,

ओं चण्डाय द्वार-पालाय नमः । ओं प्रचण्डाय द्वार-पालाय नमः

इति पूर्व-द्वार-पार्श्वयोः प्रणम्य

ओं भद्राय द्वार-पालाय नमः । ओं सुभद्राय द्वार-पालाय नम

इति दक्षिण-द्वार-पार्श्वयोः प्रणम्य,

ओं जयाय द्वार-पालाय नमः । ओं विजयाय द्वार-पालाय नम

इति पश्चिम-द्वार-पश्चयोः प्रणम्य,

| ओं धात्रे द्वार-पालाय नमः, ओं विधात्रे द्वार-पालाय नमः

इत् उत्तर-द्वार-पश्चयोः प्रणम्य,

| सर्वान् एतान् द्वार-पालान् शङ्ख-चक्र-गदा-धरान् आज्ञा-मुद्रा-धरान् ध्यायामि

इति ध्यात्वा

| ओं सर्वेभ्यो भगवद्-द्वार-पालेभ्यो नमः

इति सर्व-द्वारेषु सर्वान् द्वार-पालान् प्रणम्य,

| ओं कुमुदाय गणाधिपतये स-वाहन-परिवार-प्रहरणाय नमः,

इति पूर्वस्यां दिशि पार्श्वेश्वरं कुमुदं प्रणम्य,

[[118]]

| ओं कुमुदाक्षाय गणाधिपतये स-वाहन-परिवार-प्रहरणाय नमः

इति आग्नेय्यां दिशि कुमुदाक्षं प्रणम्य

| ओं पुण्डरीकाय गणाधिपतये स-वाहन-परिवार-प्रहरणाय नमः

इति दक्षिणस्यां पुण्डरीकं प्रणम्य,

| ओं वामनाय गणाधिपतये स-वाहन-परिवार-प्रहरणाय नमः

इति नैऋत्यां वामनं प्रणम्य,

| ओं शङ्कु-कर्णाय गणाधिपतये स-वाहन-परिवार-प्रहरणाय नमः

इति पश्चमायां शङ्कु-कर्णं प्रणम्य,

| ओं सर्व-नेत्राय गणाधिपतये स-वाहन-परिवार-प्रहरणाय नमः

इति वायव्यां सर्व-नेत्रं प्रणम्य,

| ओं सुमुखाय गणाधिपतये स-वाहन-परिवार-प्रहरणाय नमः

इत् उत्तरस्यां सुमुखं प्रणम्य,

ओं सुप्रतिष्ठिताय गणाधिपतये स-वाहन-परिवार-प्रहणाय नमः

इति ईशान्यां सुप्रतिष्ठितं प्रणम्य,

ओं सर्वेभ्यो भगवत्-पारिषदेभ्यां नमः

इति सर्वस्माद् बहिस् सर्वान् पारिषदान् प्रणमेत् ।

आत्म-निवेदनादि३

एवं परम-व्योम-क्षीरार्णवादित्य-मण्डल-हृदयेभ्यः, मधुरा-द्वावारका-ऽयोध्यादिभ्यः दिव्यावतार-स्थानेभ्यः अन्येभ्यः पौराणिकेभ्यः श्री-रङ्गादिभ्यः स्थानेभ्यश् च यथा-रुचि भगवन्तं नारायणम् आवाह्य

देवी-भूषायुध-परिजन-परिच्छदं द्वार-पाल-पार्षदैस् सेव्यमानं स्वाधीन--त्रि-विध--
चेतनाचेतन--स्व-रूप--स्थिति-प्रवृत्ति-भेदं स्वाभाविकानवधिकातिशय-ज्ञान-
बलैश्वर्य-वीर्य-शक्ति-तेजः-प्रभृत्य-असंख्येय-कल्याण-गुण-गणौघ-महार्णवं भगवन्तं
श्रीमन्-नारायणं ध्यायामि

इति ध्यात्वा प्रणम्य मूल-मन्त्रेण स्वात्मानं देवाय निवेद्य प्रणम्यानुज्ञाप्य भगवत्-पूजाम् आरभेत ।

[[119]]

इज्या-कालस् तृतीयो ऽयम् अन्हो ऽंशस् समुपागतः ।
सम्भृताश् चैव संभाराः कल्पितान्य् आसनानि च ॥
स्नानाद्य्-अर्थानि देवेश तवेच्छा वर्तते यदि ।
अवलोकन-दानेन तत् सर्वं स-फलं कुरु ॥
तद्-अर्थं सह देवीभ्यां सानुगैस् सचिवैस् सह ।
मद्-अनुग्रहाय कृपया अत्रागन्तुं त्वम् अर्हसि ॥

इति याग-प्रार्थनां कृत्वा

यावद् आद्य्-आसनं मन्त्रासनान्तं पूज्यते मया ।
तावत् सान्निध्यम् अत्रैव कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥

इत्य् अनुसन्धाय

ओं भगवन् त्वद्-आराधनम् अनुजानीहि

इत्य् अनुज्ञाप्य

पुण्डरीकाक्ष-विद्यया भगवन्तं सम्मुखी-कृत्य

सर्वार्थ-जलम् आदाय वेदादीन् मूल-मन्त्रं चोक्त्वा

मन्त्रासनम्③

भगवन् इदम् आसनं प्रतिगृह्णीष्व

इति आसनार्थं पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य मूल-मन्त्रेण पाद-पीठं दत्त्वा "अर्चत प्रार्चते"ति साम्ना पुष्पाञ्जलिं प्रक्षिप्य

विभो सकल-लोकेश विष्णो जिष्णो प्रभो हरे ।
त्वां भक्त्या पूजयाम्य् अद्य भोगैर् अर्घ्यादिभिः क्रमात् ॥

इत्थं अर्घ्य-प्रार्थनां कृत्वा पात्रेण पूर्व-स्थापिताद् अर्घ्य-पात्रात् अर्घ्य-जलम् आदाय पाणिभ्यां घ्राण-समम् उद्धृत्य तद् अम्भः सावित्र्या ऽभिमन्त्र्य

भगवन् मत्-पूजां प्रतिगृह्णीष्व

[[120]]

इति चिन्तयन्

भगवन्-मुखे दर्शयित्वा

विष्णु-गायत्र्या मूल-मन्त्रेण च भगवद्-दक्षिण-हस्ते किञ्चित् प्रदाय शेषम् अर्घ्यं प्रतिग्रह-पात्रे प्रक्षिपेत् ।

पुनर् उद्धरिण्या ऽर्घ्य-जलम् आदाय "ओं भगवन् ! अर्घ्येणार्चयिष्यामी"ति सङ्कल्प्य भगवन् !
इदम् अर्घ्यम् इति भगवन्-मुखे दर्शयित्वा मूल-मन्त्रेण प्रदाय हस्तौ प्रक्षाल्य पुष्पाणि दत्त्वा

अ-कृत्रिम-प्रेम-रस-निर्भरैः स्व-कराम्बुजैः ।
शुद्धैः स्व-भाव-सुभगैस् सुख-स्पर्शैस् सुगन्धिभिः ॥
संवाह्यमानम् अनिशं शेष-शेषाशनादिभिः ।
असत्यस्याति नीचस्य भक्ति-हीनस्य दुर्मतेः ॥
ममापिकरयोर् अद्य स्वयैव कृपया हरे । निधेहि चरण-द्वन्द्वं त्वाम् अस्मि शरणं गतः
॥

इति पाद्य-प्रार्थनां कृत्वा पाद्य-पात्राज् जलम् आदाय "भगवन् ! इदं पाद्यं प्रतिगृह्णीष्वे"त्य् अनुसन्धाय "त्रीणि पदे"ति ऋचा मूल-मन्त्रेण च पादयोः किञ्चित् प्रदाय मनसा पादौ प्रक्षालयन् पाद्यं प्रतिग्रह-पात्रे प्रक्षिपेत् ।

पादौ वस्त्रेण सम्मृज्य मूल-मन्त्रेण चन्दन-क्षौद-वारिभिश् चरणाव् आलिप्य गन्ध-पुष्पाणि दत्त्वा आचमनीय-पात्राज् जलम् आदाय "भगवन् ! आचमनीयं प्रतिगृह्णीष्वे"त्य् उक्त्वा "आपः पुनन्तु" इत्थं एतेन मूल-मन्त्रेण च भगवद्-दक्षिण-हस्ते किञ्चित् प्रदाय तत्-प्रतिग्रह-पात्रे शेषं

दद्यात् । ततो वस्त्रेण सम्मृज्य हस्तौ प्रक्षाल्य पादयोः पुष्पाणि दत्त्वा मूल-मन्त्रेण गन्ध-पुष्प-धूप-दीपाचमनानि दत्त्वा मूल-मन्त्रेण मधु-पर्क आचमनीयं च दत्त्वा कर्पूरादि-मातु-लिङ्ग-समुदाय-रूप-मुख-वास-ताम्बूलादीनि दत्त्वा प्रणम्य,

[[121]]

आत्मात्मीयञ्च यत् किञ्चित् दुर्भरं दुस्त्यजं मम ।
तत् सर्वं त्वयि विन्यस्तं शुभयोः पाद-पद्मयोः ॥

आत्मात्मीयं च सर्वं भगवन् नित्य-किङ्करतया स्वीकुर्वेति भगवते निवेदयेत् ।

स्नानासनम्③

ततः स्नानासनं परिकल्प्य "ओं स्नानासनाय नमः" इति स्नानासनं गन्ध-पुष्पादिभिर् अभ्यर्च्य "ओं पादुकाभ्यां नमः" इति पादुके गन्धादिभिर् अभ्यर्च्य भगवन्तं प्रणम्य तत्-पादुके करे कृत्वा स्व-मूर्धनि अञ्जलिं कृत्वा

दासो ऽहं ते जगन्-नाथ स-पुत्रादि-परिग्रहः ।
प्रेष्यं प्रशाधि कर्तव्ये मां नियुङ्क्ष्व हि ते सदा ॥
स्नान-कालस् त्व अयं प्राप्तः तवेच्छा वर्तते यदि ।
अभ्यञ्जयित्वा देवेश सु-स्नानं कर्तुम् अर्हसि ॥
स्फुटी-कृतं मया देव इदं स्नानासनं त्वयि ।
स-पाद-पीठं परमं शुभं स्नानासनं महत् ॥
आसादयस्व स्नानार्थं मद्-अनुग्रह-काम्यया ॥

इति प्रार्थ्य "ओं भगवन् ! इमे पादुके" इति पादुके भगवतः पुरतो निधाय "इदं विष्णुः" "त्रीणि पदेति" द्वाभ्यां पादुकारोहणं ध्यात्वा "उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत" इति मन्त्रेण भगवन्तं स्नातुम् उत्थाप्य

[[122]]

"भद्रं कर्णेभिर्" इति मन्त्रेण भगवन्तं स्नानासनं प्राप्य सावित्र्या मूल-मन्त्रेण चार्घ्यं दत्त्वा "त्रीणि पदे"ति मन्त्रेण, मूल-मन्त्रेण च पाद्यं दत्त्वा "आपः पुनन्त्वि"ति मन्त्रेण, मूल-मन्त्रेण च आचमनं दत्त्वा मूल-मन्त्रेण गन्ध-पुष्पाणि दत्त्वा एवं श्रियः भूमि-नीलादि-देवीनां तत्-तन्-मूल-मन्त्र-शिरस्कैर् एतैर् एव मन्त्रैः स्नानासनाद्य् एतावत् पर्यन्तं कृत्वा माल्य-भूषण-वस्त्राण्य् अपनीय विष्वक्सेनाय दत्त्वा मूल-मन्त्रेण स्नान-शाटिकाम् उत्तरीयं च प्रदाय मूल-मन्त्रेण पाद्याचमन-पाद-पीठ-प्रदानानि कृत्वा "तद् विष्णोर्" इति मन्त्रेण दन्त-धावन-काष्ठं दत्त्वा मूल-मन्त्रेण दन्त-परिशोधनं ध्यात्वा विष्णु-गायत्र्या जिह्वा-निर्लेखन-पट्टिकां दत्त्वा मूल-मन्त्रेण जिह्वा-निर्लेखनं ध्यात्वा "आपो अस्मान्" इति वक्त्र-गण्डूषं कृत्वा "आप इद्वा उभेषजीर्" इति मुखारविन्द-प्रक्षालनं कृत्वा "भद्रा ते हस्ता सुकृतोते"ति हस्त-प्रक्षालनं कृत्वा

"आपोहिष्ठे"त्याचमनीयं दत्त्वा मूल-मन्त्रेण आदर्शं प्रदर्श्य मूल-मन्त्रेण मुख-वास-ताम्बूलादीनि दत्त्वा श्रियादि-देवीनाम् एतावत् पर्यन्तं कृत्वा वाम-देव्येन तैलाभ्यङ्गं कृत्वा "श्रियेते पृश्निरूपसेचनीभूत्" इति ऋचा माष-चूर्ण--चन्दन-चूर्णादिना विग्रहोद्धर्तनं कृत्वा "मूर्धानं दिव" इति गन्धान् केशेषु लेपयित्वा "विष्णोर्नुकम्" इत्य् आमलक-तोयं दत्त्वा "न ते विष्णो" इति केशान् प्रक्षाल्य "आपो यं वः प्रथमम्" इति सूक्तेन अङ्ग-प्रक्षालनं कृत्वा "आपोहिष्ठे"ति तिसृभिर् अभिषेकं कृत्वा "अतो देवा अवन्त्" इति कङ्कतेन केशान् परिमृज्य व्याहृत्या प्लोत-वस्त्रेण अङ्गं परिमृज्य "हिरण्य-वर्णा हरिणीम्" इति हरिद्रा-लेपनं कृत्वा "हिरण्य-वर्णाश् शुचय" इति चतसृभिः प्रक्षाल्य "विष्णोर्नुकम्" इति मन्त्रेण पुण्य-क्षेत्रादि-मृद्-वारिभिः "तद् विष्णोर्" इति सहदेव्यादि-मूल-वारिभिः "प्रतद्विष्णुर्" इति पलाशादि-पल्लवाम्बुभिः "देवस्यत्वे"ति कुसुम-तोयैः "आवां मित्रावरुणे"ति सर्षपाद्य्-अम्बुभिः "ध्रुवा द्यौर्" इति मन्त्रेण तिलादि-वारिभिः "भद्रं कर्णेभिर्" इति मन्त्रेण श्यामाकाद्य्-अम्बुभिः

[[123]]

"न ते विष्णो" इति काश-मूलाद्य्-अम्बुभिः "इरावती" इति मन्त्रेण तुलसी-पात्रादि-वारिभिः "अतो देवा अवन्त्" इति मुस्ताद्य्-अम्बुभिः "इदं विष्णुर्" इति मन्त्रेण मुद्गादि-तोयैः "त्रीणि पदे"ति मन्त्रेण शङ्ख-पुष्पादि-तोयैः "विष्णोः कर्माणी"ति श्वेतार्कादि-तोयैः "तद् विष्णोर्" इति सुरभ्यादि-जलैः "तद्विप्रास" इति लोह-वारिभिः "इन्द्रा विष्णू" इति मातु-लिङ्ग-दाडिम-बदरी-फलाम्भसा "प्रवायुमच्छे"ति मन्त्रेण जम्बू-नागर-बदरी-फलाम्भसा "वषट्ते विष्णो" इति मन्त्रेण तक्कालैला-बदर-फलाम्भसा "तित्रो वाच" इति क्षीरिकामलक-बदर-फलाम्भसा "इषे त्वोर्जेत्" इति मन्त्रेण द्राक्षा-खर्जूर-बदर-फलाम्भसा "सरीरीत्व[[?]]दि"ति मन्त्रेण चूत-पारावत-बदर-फलाम्भसा "यस्मिन् विश्वानि" इति मन्त्रेण क्षुद्र-पनस-बदर-फलाम्भसा "पर्जन्याये"ति मन्त्रेण बिल्व-कदली-बदर-फलाम्भसा "यज्ञा यज्ञीय" मन्त्रेण सर्व-फलाम्बुभिः "सहस्र-शीर्षं देवम्" इति उशीर-वीरण-मूल-तमाल-पत्र-वारिणा "विश्वतः परमं नित्यम्" इति कर्पूर-कुङ्कुम-तमाल-पत्र-वारिणा "पतिं विश्वस्ये"ति चम्पक-मुकुल-मांसी-तमाल-पत्र-तोयेन "नारायण-परं ब्रह्म" इति चन्दन-द्वय-तमाल-पत्र-वारिणा "यच्च किञ्चिद्" इति सुर-पर्णी-रजो-मुरा-कर्दम-तमाल-पत्र-वारिणा "अनन्तम् अव्ययम्" इति गिरि-ज-मूल-प्रैयङ्गव-रजस्-तमाल-पत्र-वारिणा "अधो निष्ठावि"ति मन्त्रेण कुष्ठ-द्वय-तमाल-पत्र-वारिणा "सन्ततं सुराभिर्" इति अगरु-द्वय-तमाल-पत्र-वारिणा एताभिर् अष्टाभिस् समस्ताभिर् ऋग्भिः सर्व-गन्धाम्भसा "या दिव्या आपः" इति मन्त्रेण वापी-नलिनी-निर्झर-वारिणा "आपो हिष्ठे"ति मन्त्रेण सरिन्-नलिनी-निर्झर-तोयेन "ये ते शतम्" इति मन्त्रेण कूप-नलिनी-निर्झर-तोयेन "इमं मे वरुणे"ति हिम-नलिनी-निर्झराम्भसा "शन्नो देवीर्" इति वृष्ट- नलिनी-निर्झर-तोयेन

[[124]]

"यासाँ राजे"ति गङ्गा-नलिनी-निर्झर-तोयेन "समुद्र-ज्येष्ठा" इति समुद्र-नलिनी-निर्झर-जलेन "यासां देवा" इति तटाक-नलिनी-निर्झर-जलेन "वरुण-सूक्तेन" सर्वाम्भसा "त्रातारम् इन्द्रम्" इति मन्त्रेण यव-शाल्य्-अम्भसा "आत्वा वहन्त्" इति मन्त्रेण गो-धूम-शाल्य्-अम्भसा "जितन्त" इति मन्त्रेण व्रीहि-शालि-तोयेन "आपो वा इदम्" इति शालि-तोयेन "तावतीर् ओषधय" इति

मुद्ग-शालि-तोयेन "सत्त्वं नो अग्न" इति प्रियङ्गु-शालि-तोयेन "त्वं नो अग्न" इति माष-शालि-
तायेन महा-व्याहृतीभिः श्यामाक-शालि-तोयेन "अणोरणीयान्" इति यवाद्य्-अष्ट-धान्य-सहित-
नीवार-तोयेन गायत्र्या गो-मूत्रेण "गन्ध-द्वाराम्" इति गो-मयेन "पयो-व्रतेन पयसा
दधिक्रावण्णे"ति दध्ना "घृतं मिमिक्षे"ति घृतेन "विष्णोरराट्मसी"ति उष्णोदकेन "मूर्धानं दिव"
इति पञ्च-गव्येन "हिरण्य गर्भ" इति मन्त्रेण पञ्चामृतेन "आप्यायस्वे"ति सक्तुभिः राक्षोघ्न-
साम्ना मृज्-जलेन "पवित्रवन्त" इति कर्पूर-वारिणा "भगवान् वासुदेव" इति लाज-वारिणा,
देव-व्रत-साम्नाभिमन्त्रित-जलेन वैयाघ्र-साम्ना गुड-वारिणा अपराजित-साम्ना तैलेन द्वादशाक्षर-
मन्त्रेण पाद्य-तोयेन "द्रुपदादिव" इत्य् अर्घ्य-तोयेन अष्टाक्षरेणा ऽऽचमन-तोयेन "शन्नो देवीर्"
इति मङ्गलाम्भसा "हिरण्य-पाणिम्" इतीक्षु-रसैः "वेदाहम्" इति मन्त्रेण सर्षप-तोयेन "आनो
नियुद्धिर्" इति सर्व-गन्ध-रसैः "श्री-सूक्तेन" शान्ति-द्रव्य-वारिभिः "मधुमान्न" इति "मधु-
नक्तम्" इति च "मधु-वाता" इति च नालि-केर-रसैः "सहस्र-शीर्षा पुरुष" इति सूर्य-कान्त-पद्म-
राग-जलेन "पुरुष एवेदम्" इति वैडूर्य-चन्द्र-कान्त-जलेन "एतावानस्ये"ति इन्द्र-नील-कान्त-
जलेन "त्रि-पाद् ऊर्ध्व" इति प्रवाल-गारुत्मत-जलेन "तस्माद् विराड् अजायत" इति पुष्प-राग-
स्फटिक-जलेन "यत् पुरुषेण हविषे"ति पद्म-राग-कनक-जलेन "सप्तास्यासन्नि"ति वज्र-रजत-
जलेन "तं यज्ञम्" इति ताम्र-मुक्ता-जलेन "तस्माद् यज्ञाद्" इत्य् अष्टभिर् ऋग्भिर् मूल-मन्त्रेण च
शुद्धाम्भसा

[[125]]

संस्थाप्य पुनः मूल-मन्त्रेण हरिद्राम् आलिप्य "हिरण्य-वर्णाम्" इति चतसृभिः प्रक्षाल्य विष्णु-
सूक्तेन गन्धाम्बुना प्रक्षाल्य विष्णु-गायत्र्या कुङ्कुमेनालिप्य "पावमानीभिः" ब्रह्म-यज्ञेन
"कयानश्चित्र आभुवदि"ति प्रक्षाल्य "युवासुवासा" इति वस्त्रं दत्त्वा प्रणवेनोत्तरीयं दत्त्वा पवित्र-
मन्त्रेण पवित्रं दत्त्वा मूल-मन्त्रेण विष्णु-गायत्र्या च अर्घ्यं पाद्यं च दत्त्वा "शन्नो देवीर्" इत्य्
आचमनीयं दत्त्वा सावित्र्या परिषिच्य मूल-मन्त्रेण गन्ध-पुष्प-धूप-दीपाचमनीयानि दत्त्वा

देव-देव सुरास् सर्वे सिद्धाश् च परम-र्षयः ।
त्वत्-सेवार्थम् इहायातान् स्नानेनैतान् कृतार्थय ॥

इति सर्व-मङ्गल-स्नानं प्रार्थ्य पुरुष-सूक्तेन "अद्भ्यस् संभूत" इत्य् अनेन नारायणानुवाकेन
विष्णु-सूक्तेन श्री-सूक्तेन जितन्ते इति विद्यया च सर्व-मङ्गल-युक्तं सहस्र-धारा-स्नपनं कृत्वा
"श्रियै जात" इत्य् ऋचा नीराजनं दत्त्वा मूल-मन्त्रेणाचामनं दत्त्वा अतिबल-पवित्र-मन्त्राभ्यां
स्नानं दत्त्वा "युवं वस्त्राणी"ति शिरसः प्लोतम् उष्णीषं दत्त्वा "अग्निर् मूर्धे"ति मन्त्रेण प्लोत-
वाससा ऽङ्गं परिमृज्य विष्णु-गायत्र्या द्वे धौते निर्मले वस्त्रे दत्त्वा प्रणवेन ब्रह्म-सूत्रम् उत्तरीयं च
दत्त्वा "आपः पुनत्स्" इत्य् आचमनीयं दत्त्वा मूल-मन्त्रेण पवित्रं दत्त्वा

स्नातं भगवता देव मन्त्र-सम्भाविताम्बुभिः ।
वयं व्यपगत-क्लेशा जाता स्म विगतांहसः ॥

इति विज्ञाप्य

अलङ्कारासनम् ③

सम्पन्नं देव सद-वस्त्र-भूषा-स्रक्-चन्दनादिकम् ।
अलङ्कारासनं भद्रं अधितिष्ठ तृतीयकम् ॥

[[126]]

इत्य् अनुज्ञाप्य

"ओम् अलङ्कारासनाय नम" इति अलङ्कारासनम् अभ्यर्च्य "ओं भगवत्-पादुकाभ्यां नम" इति पादुके गन्धादिभिर् अभ्यर्च्य "ओं भगवन् इमे पादुके" इति मूल-मन्त्रेण पादुके दत्त्वा मूल-मन्त्रेणालङ्कारासनम् आनीय पूर्ववत् स्वानीय-वर्ज अर्घ्य-पाद्याचमन-सर्वार्थ-तोयानि कल्पयित्वा मूल-मन्त्रेणार्घ्य-पाद्याचामनीय-गन्ध-पुष्पाणि दत्त्वा एवं श्र्य-आदि-देवीनां च कृत्वा "मूर्धानं दिव" इति ऋचा अगुरु-धूपेन केशान् संशोष्य मूल-मन्त्रेण कर्पूर-रजसा आपाद-तल-मस्तकम् आलिप्य "इदं विष्णुर्" इति शुचिना सुगन्धिना चन्दनेन वपुषि आलोपनं कृत्वा विष्णु-गायत्र्या कसूरिकां मृग-मदं च दत्त्वा प्रणवेन कुङ्कुमेनालिप्य विष्णु-गायत्र्या वेदादिभिश् च पीत-कौशेय-धारणं कृत्वा "त्रातारम् इन्द्रम्" इति मौलि-मालां दत्त्वा "सहस्र-शीर्षे"ति ऋचा शिरसि किरीटं दत्त्वा "ऋक्-सामाभ्याम् आभहिताव्" इति श्रोत्रयोः कुण्डले विन्यस्य "दमूनसो अपसो यो सुहस्ता" इति केयूराङ्गद-भूषणानि दत्त्वा "विश्वेदेवस्य नेतुर्" इति हारं दत्त्वा "हस्ताभ्यां दश-शाखाभ्याम्" इत्य् अङ्गुलीषु अङ्गुलीयकान् दत्त्वा "यस्य त्री पूर्णा मधुना पदानि" इति नूपुरे विन्यस्य "नकिर् इन्द्र त्वद् उत्तर" इति कटि-सूत्रं दत्त्वा "जितन्त" इति मन्त्रेण अन्यानि भूषणानि दत्त्वा "ब्रह्मणा ते ब्रह्म-युजा युनज्मी"ति यज्ञोपवीतं दत्त्वा "ऋतस्य तन्तुं विततः पवित्र" इति कुश-पवित्रं दत्त्वा "युवं वस्त्राणी"त्य् उत्तरीयं दत्त्वा "तद् विष्णोर्" इति मन्त्रेण पुष्प-मालाः पुष्पाणि च दत्त्वा "इरावती"ति मन्त्रेण पयो-दध्य-अक्षतान् दत्त्वा "तद् विष्णोर्" इति मन्त्रेण श्वेत-मृत्स्रया तिलकं दत्त्वा "हिरण्य-वर्णा हरिणीम्" इत्य् ऋचा श्री-चूर्णं दत्त्वा विष्णु-गायत्र्या शलाकया अञ्जनं दत्त्वा "रूपं रूपम्" इति व्याहृत्या च दर्पणं प्रदर्श्य "जितन्त" इति मन्त्रेण अगुरु-धूपं दत्त्वा

[[127]]

"उद्दीप्यस्वे"ति मन्त्रेण दीपं दत्त्वा "शन्नो देवीर्" इत्य् आचमनं दत्त्वा "स्वस्तिदा विशस्पतिर्" इति शक्राद्य[[?]]-आयुधानि दत्त्वा

"ओं यात्रासनाय नमः" इति यात्रासनम् अभ्यर्च्य "ओं भगवत्-पादुकाभ्यां नमः" इति भगवन् इमे पादुके इति ते दत्त्वा "आस्थान-मण्डपाय नमः" "राजानाव् अनभिद्गुहा" इत्य् आस्थान-प्रवेशनं ध्यात्वा

"ओं सहस्र-शिरसे अन्-अन्ताय नाग-राजाय नम

इत्य् आसनं पाद-पीठं च दत्त्वा मूल-मन्त्रेण मुख-वासनं ताम्बूलं च दत्त्वा एवं श्र्य-आदि-देवीनां च कृत्वा "द्यौर्नय इन्द्रे"ति मुक्तामयं छत्रं दत्त्वा "सोमः पवते जनितामतीनाम्" इति चामराणि

दत्त्वा "सोम-पूषणे"ति मयूर-पिच्छ-यजन-ताल-वृन्तौ दत्त्वा विष्णु-गायत्र्या "आत्यमूषु वाजिनम्" इति तार्क्ष्य-सूक्तेन "सुपर्णो ऽसि गरुत्मान्" इति यजुषा तर्क्ष्य-साम्ना च गरुड-ध्वजं दत्त्वा "इन्द्रम् विश्वा अवीवृधन्" इति रथं "आतून इन्द्र क्षुमन्तम्" इति गजं "त्वष्टारम्" इत्य् अश्वं बृहद्-रथन्तराभ्यां शिबिकां दोलिकादि-वाहनानि दत्त्वा वाम-देव्य-राजन-भद्र-श्रेयो-यज्ञायज्ञियैर् नृत्त-गति-शङ्ख-चिह्न-काहल-वेणु-वीणा-भेर्यादि-सकल-विध-वाद्यादिभिर् अभ्यर्च्य मङ्गल-पठनं कुर्वन् नीराजनं पञ्च-पिण्ड-प्रक्षोपणं च कृत्वा

तिल-तण्डुल-ताम्बूल-तपनीय-घृताम्बरैः ।
पूरितां दर्शये मात्रां पात्रेण प्रणतार्तिहन् ॥
भोगापवर्ग-फल-दान् भुङ्क्ष्व भोगान् जगद्-गुरो ।
सताम् अप्य् असताम् एषाम् अस्तु ते परिपूर्णाता ॥

[[128]]

इति विष्णु-गायत्र्या च तिल-वस्त्र-हेम-ताम्बूल-शालि-तण्डुल-फल-गव्याहार--गो-धान्य--गो-ग्रासादि--सर्व-भोग-पूरणीं मात्रां देव-सन्निधौ दर्शयित्वा यथा-शक्ति वसु-दानं कारयित्वा जल-पूर्ण-घट-दीपम् आनीय शोषण-दाहन-प्लावनानि कृत्वा

ऋग्-वेदाय नमः हरिः ओम् अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् । ओं यजुर्-वेदाय नमः हरिः ओं इषेत्वार्जत्वा वायवस्थोपायवस्थदेवोवस्सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे ओं साम-वेदाय नमः हरिः ओं अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये । निहोता सत्सि बर्हिषि । ओं अथर्वण-वेदाय नमः हरिः ओं शान्तो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्सवन्तु नः । ओं आयुर्-वेदाय नमः ओं धनुर्-वेदाय नमः । ओं गान्धर्व-वेदाय नमः । ओं श्री-पाञ्च-रात्र-शास्त्राय नमः । [[TODO: परिष्कार्यम्]]

जितन्ते पुण्डरीकाक्ष नमस् ते विश्व-भावन ।
नमस् ते ऽस्तु हृषी-केश महा-पुरुष पूर्व-ज ॥

"ओं शिक्षायै नमः" ।

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा ।
शास्त्रानुपूर्व तद् विद्यात् यथोक्तं लोक-वेदयोः ॥

"ओं छन्दसे नमः" । छन्दः गायत्री-देव्यैकम् आसुरी पञ्च-दश प्राजापत्याष्टौ यजुषां षट् साम्नां द्विः ऋचां त्रिः द्वौ द्वौ साम्नां वर्धयत त्रीन् त्रीन् ऋचाम् ।

ओं निरुक्ताय नमः । ओं समाम्नायः समाम्नातः सव्याख्यातव्यः । तम् इमं समाम्नायं निघण्टव इत्य् आचक्षते । ओं ज्योतिषाय नमः ।

पञ्च-संवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजा-पतिम् ।
दिनर्त्त्व-अयन-मासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः ॥

[[129]]

प्रणम्य शिरसा कालं अभिवाद्य सरस्वतीम् ।
काल-ज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः ॥
ज्योतिषाम् अयनं कृत्स्नं प्रवक्ष्याम्य् आनुपूर्व्यशः ।
विप्राणां सम्मतं लोके यज्ञ-कालार्थ-सिद्धये ॥

"ओं कल्प-सूत्राय नमः" । अथातो दर्श-पूर्ण-मासौ व्याख्यास्यामः । अथ कर्माण्य् आचाराण्यानि गृह्यन्ते । अथैतस्य

समाम्नायस्य विधाने योगाद्य-अपत्यं वक्ष्यामः ।

अथातो विध्य-अपदेशे मन्त्र-विधिश् चाग्रहणेन । "ओं व्याकरणाय नमः" । अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । जमडणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् । वृद्धिर् आदैच् । "ओं मीमांसाभ्यां नमः" । अथाऽतो धर्म-जिज्ञासा । अथाऽतो ब्रह्म-जिज्ञासा । अन्-आवृत्तिश् शब्दाद् अन्-आवृत्तिश् शब्दात् । "ओं न्याय-शास्त्राय नमः" । प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्तावयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डाहेत्व-आभास-छल-जाति-निग्रह-स्थानानां तत्त्व-ज्ञानान् निश्चयेसाधिगमः । "ओं पुराणेभ्यो नमः" ।

तं दृष्ट्वा शत्रु-हन्तारं महर्षीणां सुखावहम् ।
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिष्वजे ॥
तासाम् आविरभूच्-छौरिः स्मयमान-मुखाम्बुजः ।
पीतांबर-धर-सग्वी साक्षान् मन्मथ मन्मथः ॥

[[130]]

अ-विकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।
सदैक-रूप-रूपाय विष्णवे सर्व-जिष्णवे ॥

"ओं इतिहासेभ्यो नमः" ।

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥

"ओं स्मृतिभ्यो नमः" ।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर-सूनवः ।

तावद् अस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

ओं अथातः सामयाचारिकान् धर्मान् व्याख्यास्यामः । ओं अर्थ-शास्त्रेभ्यो नमः ।

व्यवहारान् दिदृक्षुस् तु ब्राह्मणैस् सह पार्थिवः ।

मन्त्रज्ञैर् मन्त्रिभिश् चैव विनीतः प्रविशेत् सभाम् ॥

श्री-रङ्गादि-स्थल-माहात्म्यादींश् च पठेत् ।

एवं स्वाध्यायाध्ययनं वेदाङ्गानि स्तोत्राणि च पठित्वा मूल-मन्त्रेण पुष्पं प्रदाय मूल-मन्त्रेण घट-
दीपम् आदाय देवस्य आपाद-तल-मस्तकं त्रिः दर्शयित्वा ऽऽचमनीयं दत्त्वा प्रत्यक्षरं पुष्पं प्रदाय
द्वादशाक्षरेण विष्णु-गायत्र्या श्र्य-आदि-मन्त्रेण पञ्चोपनिषदैः पुरुष-सूक्त-श्री-सूक्त-ऋग्भिः
प्रत्येकं पुष्पं प्रदाय अन्यैश् च सहस्र-नामादिभिर् भगवन्-मन्त्रैश् शक्तश् चेत् पुष्पं प्रदाय
भूषणादि-पारिषदान्तानां तत्-तन्-मन्त्रैः स्नान-भूषण-गन्ध-पुष्प-धूप-दीपान्तं कुर्यात् ।

[[131]]

यद् वा परिजन-परिच्छद-पार्षदानां गन्धादीन् एव कृत्वा प्रणम्य प्रतिदिशं प्रदक्षिण-प्रणाम-पूर्वकं
पुष्पं दत्त्वा द्वितीये प्रदक्षिणे

जितन्ते पुण्डरीकाक्ष वासु-देव स्मित-हृते ।

रागादि-दोष-निर्मुक्त-समग्र-गुण-मूर्तये ॥

नाथ-ज्ञान-बलोत्कृष्ट नमस्ते विश्व-भावन ।

सङ्कर्षण-विशालाक्ष सर्व-ज्ञ परमेश्वर ॥

देवेशैश्वर्य-वीर्यात्मन् प्रद्युम्न-जगतां पते ।

नमस्ते ऽस्तु हृषी-केश जगन्-मूर्ते जगन्मय ॥

स्थित्य्-उत्पत्ति-लय-त्राण हेतवे शक्ति-तेजसे ।

जयानिरुद्ध-भगवन् महा-पुरुष-पूर्व-ज ॥

इति पूर्ववत् प्रणम्य श्रुति-सुखैः स्तोत्रैः स्तुत्वा स्वात्मानं नित्य-किङ्करतया निवेद्य तथैव ध्यात्वा
यथा-शक्ति मूल-मन्त्रं जपित्वा

ऐश्वर्येणोपचारेण विविधेन विशेषतः ।

भोग-यागेन भगवन् प्रीयतां मे वर-प्रद ॥

इति विज्ञाप्य

भोज्यासनम् ③

देव-देव जगन्-नाथ प्रणतार्ति-हराच्युत ।
 प्राप्ते तु प्रापणे काले भवत्य् आनीत एष ते ॥
 मृष्ट-मेध्य-स्थिरान्नानि भक्ष्य-भोज्यान् अन्-एकशः ।
 सम्पन्नानि जगन्-नाथ भोज्यासनम् उपाश्रय ॥

[[132]]

इति विज्ञाप्य अर्घ्यं दत्त्वा "ओं भोज्यासनाय नमः" इति भोज्यासनं गन्ध-पुष्प-धूप-दीपैर्
 अभ्यर्च्य "ओं भगवत्-पादुकाभ्यां नमः" इति पादुके गन्धादिभिर् अभ्यर्च्य

"ओं भगवन् ! भोज्यासनम् अङ्गीकुरुष्व ओं भगवन् ! इमे पादुके

इति विज्ञाप्य भोज्यासनोपविष्टे भगवति गायत्र्या ऽर्घ्यं विष्णु-गायत्र्या पाद्यम् "आपः पुनन्त्स्"
 इत्य् आचमनं "गन्ध-द्वाराम्" इति गन्धान् "आयनेत" इति पुष्पाणि दत्त्वा प्रणवेन कर्पूरादि-
 वासितं अर्घ्य-जलं दत्त्वा श्र्य-आदि-देवीनां भोज्यासनाद्य-एतद्-अन्तं कृत्वा गुडं माक्षिकं सर्पिः
 दधि क्षीरं चेति मधुपर्कं पात्रे निक्षिप्य शोषण-दाहन-प्लावनैर् विशोष्य अर्घ्य-जलेन प्रोक्ष्य अस्त्र-
 मन्त्रेण रक्षां कृत्वा सुरभि-मुद्रां प्रदर्श्य "ओं भगवन् ! मधुपर्कं प्रतिगृह्णीष्वे"ति विज्ञाप्य "यदीं
 सोमाबभ्रु धूता" इत्य् ऋचा "मधु-वाता" इति ऋचा च मधु-पर्कम् अवनत-शिरा हर्षोत्फुल्ल-
 नयनो हृष्टमना भूत्वा प्रदाय "अनस्वन्ता सत्पतिर्" इति शीतलोदकं तर्पणम् आचमनीयं दत्त्वा

मधुपर्काख्य-यागेन यन् मया कल्पितं विभो ।
 यागे न्यूनाति-रिक्तं तत् क्षम्यतां प्रीतये प्रभो ॥

इति विज्ञाप्य एवं श्र्य-आदि-देवीनां कृत्वा गां स्वर्ण-रत्नादिकं च यथा-शक्ति दत्त्वा आस्य-
 शोधनार्थं प्रणवेन ताम्बूलं दत्त्वा "अर्चन्तस् त्व् आहवामहे" इत्य् अक्षतान् दत्त्वा "विष्णोर्नुकम्"
 इति सूक्तेन धूपं दत्त्वा "भवामित्र" इति सूक्तेन दीपं दत्त्वात्वा

[[133]]

"शन्नो देवीर्" इत्य् आचमनीयं दत्त्वा विष्णु-गायत्र्या प्रक्षालिते राजते ताम्रे हिरण्मये मृन्-मये वा
 भाण्डे प्रणवेनाभिमन्त्रिते मूल-विद्यया तण्डुलान् निक्षिप्य पञ्चोपनिषन्-मन्त्रैर् वारिभिः पञ्चधा
 प्रक्षाल्य प्रणवेन पचन-पात्रे तण्डुलान् पूरयित्वा सुदर्शन-मन्त्रेण अङ्गुल्याम् अधिकृत्य मूल-
 मन्त्रेणानिम् उपसमिध्य पञ्चोपनिषन्-मन्त्रैः काष्ठैर् अग्निं प्रज्वाल्य सम्यक् पचनं कृत्वा भगवद्-
 याग-योग्यानि व्यञ्जनानि चाज्ये पक्त्वा सौवर्णादीनि नैवेद्य-पात्राणि विष्णु-गायत्र्या प्रक्षाल्य
 सम्यक् परिमृज्य तेषु आज्याढ्यं सुसंस्कृतम् अन्नं भक्ष्य-भोज्यादिकं मधुरादि-रसोपेतं विध्य-
 उक्तम् अन्यत् पक्वं फल-मूल-व्यञ्जनादिकं दधि-क्षीर-मधूनि च मोदकाद्य-अपूप-वस्तूनि च
 पायसान्न-मुद्गान्न-गुडोदन-दध्य-ओदनादीनि च पानकानि सुवासितानि पानीयानि चान्यानि लोके
 प्रियतमानि आत्मनश् चेतानि शास्त्राविरुद्धानि सम्भृत्यास्त्र-मन्त्रेण वासोभिः प्रच्छाद्य पाक-गृहान्
 नियम-युक्तैः परिचर्या-परैः धृतोष्णीषैर् आच्छादित-वदनैर् विप्रैर् अग्रे भूमौ जल-धारा-निषेचन-
 मङ्गल-वाद्य-घोष-पुरस्सरं आनीतानि "वितुन्नस्तोषम्" इति सूक्तेन देवस्य पुरतो निहितानि कृत्वा

प्रणवेन "समुद्रादूर्मिर्" इति सूक्तेन हवींषि आज्य-धारया सिक्त्वा "तद-
अस्थानीकमुतचारुनामे"ति[[?]] स-हिरण्यं घृतं निधाय शोषण-दाहन-प्लावनानि कृत्वा अस्त्र-
मन्त्रेण ओं पूर्विकाभिर् व्याहृतीभिश् च अर्घ्य-जलेन प्रोक्ष्य "बलाय कवचाय हुम्" इति वर्मणा
"सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामी"ति च परिषिच्य सुरभि-मुद्रां प्रदर्श्य प्रणवेनार्हण-जलं भगवतो
दक्षिण-हस्ते दत्त्वा निवेदयेत् ।

[[134]]

पायसान्नं गुडान्नं च मुद्गान्नं शुद्ध ओदनम् ।
दधि-क्षीराज्य-सम्मिश्रं नाना ऽपूप-फलान्वितम् ॥
प्रभूतम् अथ नैवेद्यं भक्ष्य-भोज्यान् अन्-एकशः ।
मधुराद्या रसास् सर्वे शाकाद्या बहु-मूलकाः ॥
मोदकानि विचित्राणि ह्य् अपूप-व्यञ्जनानि च ।
उपपन्नम् असङ्कीर्णं सर्व-दोष-विवर्जितम् ॥
असत्यम् अ-शुचिं नीचं अपराधैक-भाजनम् ।
अल्प-शक्तिम् अ-चैतन्यं अन्-अर्हं त्वत् क्रियास्व अपि ॥
माम् अवादृत्य दुर्बुद्धिं स्वयैव कृपया विभो ।
अतिप्रभूतम् अत्यन्त-भक्ति-स्नेहोपपादितम् ॥
शुद्धं सर्व-गुणोपेतं सर्व-दोष-विवर्जितम् ।
स्वानुरूपं विशेषेण स्व-देव्योस् सदृशं गुणैः ॥
त्वम् एवेदं हविः कृत्वा स्वीकुरुष्व सुरेश्वर ।
शर्करा-मधु-संयुक्तं देवोभिस् समुपाश्रितम् ॥
ताभिर् निवेद्यमानं च प्रीत्या स्वीकुरु माधव ।

अतिप्रभूतम् अतिप्रियतमम् अतिसमग्रम् अत्यन्त-भक्ति-कृतम् इदम् इति मत्वा स्वीकुर्व् इत्य्
अनुसन्धाय "तमस्मेरा युवतयो युवानम्" इति "अमृतोपस्तरणमसी"ति चापो ऽशनं दत्त्वा "अग्ने
विधस्व दुषस" इति पञ्चभिर् ऋग्भिः "प्राणे निविष्टो अमृतं जुहोमी"त्यादिभिः पञ्चभिर् मन्त्रैश्
च परमात्मनि क्रमेण प्राणाहुतीर् हुत्वा "ब्रह्मणि म आत्मे"त्य् अनुसन्धाय दक्षिणेन जान्वा भूमिं
स्पृशन् वाम-कर-पृष्ठेन

[[135]]

दक्षिण-करम् उन्नम्य दक्षिण-करेण गृहीतान् ग्रासान् पुष्पेण ग्रास-मुद्रां दर्शयन् "परोमात्रये"ति
सूक्तम् "अहमस्मी"त्य् अन्न-सूक्तं च पठन् "देवस्यत्वे"ति मन्त्रेण देवस्य दक्षिण-हस्ते निर्वाप्य
हविर् निवेद्य "तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठगा आप" इति पानीयं पयः प्रभृति अनुपान-शीतलोदक-
तर्पणानि कृत्वा "इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्ये"ति "अमृतापिधानमसी"ति चापोशनं दत्त्वा "पूत
आश्विनीः पवमानधीजव" इति माष-चूर्णेन एला-चन्दनक्षौद-वारिणा च हस्त-प्रक्षालनं कृत्वा
"सरस्वती देवयन्तो हवन्त" इति अद्भिर् वक्त्र-गण्डूषं कृत्वा विष्णु-गायत्र्या मुख-पाद-पाणि-
प्रक्षालनं कृत्वा "वृष्टिं दिवः शत-धारः पवस्वे"ति द्वाभ्याम् आचमनं दत्त्वा "शिशुञ्जज्ञानं हर्यतं

मृजन्ती"ति मुख-हस्त-पादान् सम्मूज्य "गन्धद्वाराम्" इति चन्दनं मुख-वासं च दत्त्वा एवं श्र्य-
आदि-देवीनां नैवेद्यं कृत्वा "दक्षिणवताम्" इति "मानचित्रे"ति ऋचा ताम्बूलं दत्त्वा "स्वादुः
पवस्वे"ति ऋचा आचमनं दत्त्वा प्रणम्य,

पुनर्-मन्त्रासनम्③

अनेनान्नाद्य-यागेन सम्यग् आराधितेन च ।
पद्म-नाभो ऽरविन्दाक्षः प्रीतिम् अभ्येतु मे ऽच्युतः ॥

इति विज्ञाप्य मन्त्रासनं कूर्चेन मार्जयित्वा

"ओं मन्त्रासनाय नमः" इति मन्त्रासनं गन्ध-पुष्प-धूप-दीपैर् अभ्यर्च्य "ओं भगवत्-पादुकाभ्यां
नमः" इति पादुके गन्ध-पुष्प-धूप-दीपैर् अभ्यर्च्य,

पद्म-नाभो ऽरविन्दाक्ष प्रणतार्ति-हर प्रभो ।
श्री-भू-नीला-समेतस् त्वं प्रसीदाच्युत मे ऽन्वहम् ॥

[[136]]

इति पादुके प्रार्थ्य

ओं भगवन् ! मन्त्रासनम् आसादय ओं भगवन् इमे पादुके

इति विज्ञाप्य मन्त्रासनोपविष्टे भगवति देवीषु च माल्यादिकम् अपोह्य विष्वक्सेनाय दत्त्वा विष्णु-
गायत्र्या ऽर्घ्यं दत्त्वा "त्रीणि पदे"ति पाद्यं दत्त्वा प्रणवेन आचमनीयं दत्त्वा "इदं विष्णुर्" इति
गन्धान् दत्त्वा "तद् विष्णोर्" इति पुष्पाणि दत्त्वा "जितन्तः" इति धूपं दत्त्वा "उद्दीप्यस्वे"ति दीपं
दत्त्वा "शन्नो देवीर्" इत्य् आचमनं दत्त्वा "देवस्यत्वे"त्य् अपूप-पृथुक-सक्तु-गुड-मिश्र-तिल-
पिण्ड-मथित-पानीय-नालिकेराम्बु-फलादिकं निवेद्य "आपः पुनन्त्व" इत्य् आचमनं दत्त्वा विष्णु-
गायत्र्या मुख-वास-द्रव्यं दत्त्वा प्रणवेन ताम्बूलं दत्त्वा एवं श्र्य-आदीनां दत्त्वा मूल-मन्त्रेण नृत्त-
गीत-वाद्यादिभिर् अभ्यर्च्य "आयं गौर्" इति सूक्ताभ्यां पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा "आत्वाहार्षम्" इति
ध्रुव-सूक्तेन नीराजनं दत्त्वा पूर्ववत् "जितन्तः" इति मन्त्रेण प्रदक्षिण-द्वयं कृत्वा मन्त्र-रत्नेन
दण्डवत् प्रणम्य श्रुति-सुखैः स्तोत्रैः स्तुत्वा

अज्ञानतो ऽप्य् अ-शक्त्या वा
आलस्याद् दुष्ट-भावतः ।
कृतापराधं कृपया
क्षन्तुम् अर्हसि मां विभो ॥

इति विज्ञाप्य

नित्य-मुक्ताचनम्③

अनन्त-गरुड-सुदर्शनादि-दिव्यायुध-विष्वक्सेन-पूजा-प्रकारः॥

। "भगवन् ! विष्वक्सेनार्चनम् अनुजानीहि"

इत्थं अनुज्ञाप्य

भगवन्-निवेदिताद् धविषः विष्वक्सेनाय किञ्चिद् उद्धृत्य
अन्यत्र निधाय

अन्यत् सर्वम् अन्-अन्ताय गरुडाय सुदर्शनादि-दिव्यायुधेभ्यश् च
पर-कालादि-स्वाचार्य-प्रमुखेभ्यः श्री-वैष्णवेभ्यश् च तत्-तन्-मन्त्रेण प्रदद्यात् ।

"अन्-अन्तम् अ-व्ययं कविम्" इत्थं अनेन अन्-अन्त-मन्त्रेण अन्-अन्तस्य षोडशोपचार-पूजां
कुर्यात् !

[[137]]

"तत्पुरुषाये"ति गरुड-गायत्र्या गरुड-पञ्चाक्षरेण वा गरुड-पूजां कुर्यात् । सुदर्शन-षड्-अक्षरेण
सुदर्शनस्य "ओं सं मोहहुं फट्"

पाञ्च-जन्य-मन्त्रेण शङ्खस्य च पूजां कुर्यात् । अन्येषां प्रणवादि-चतुर्थ्यन्तैस् तत्-तन्-नामभिः
पूजयेत् !

यद् वा

। ओं नं नन्दकाय नमः । ओं शं शाङ्गाय नमः । ओं कौं कौमोदक्यै नमः । ओं पं पद्माय
नमः । ओं शं शठकोपाय नमः । ओं पं पर-कालाय नमः । ओं रं रामानुजाय नमः ।

इत्थं आदिभिः तत्-तन्-मन्त्रैः पूजां कुर्यात् । भगवद्-याग-शिष्ट-जलादिभिर् द्रव्यैर् विष्वक्सेनम्
अभ्यर्च्य पूर्वोद्धृतं हविश् च दत्त्वा तद्-अर्चनं परिसमापयेत् ।

पर्यङ्कासनम्③

"ओं पर्यङ्कासनाय नमः" इति पर्यङ्कासनं गन्धादिभिर् अभ्यर्च्य "ओं भगवत्-पादुकाभ्यां
नमः" इति पादुके गन्धादिभिर् अभ्यर्च्य

। ओं भगवन् ! पर्यङ्कासनम् आसादय, भगवन् ! इमे पादुके

इति विज्ञाप्य पर्यङ्कासनोपविष्टे भगवति विष्णु-गायत्र्या ऽर्घ्यं दत्त्वा "त्रीणि पदे"ति पाद्यं दत्त्वा "शन्नो देवीर्" इत्य् आचमनीयं दत्त्वा सर्वाणि माल्य-भूषणानि वासश् चापनीय विष्वक्सेनाय दत्त्वा "युवा सुवासा" इति सुख-शयनोचितं वासो दत्त्वा "विश्वजिते धनजित" इति सूक्तेन तद्-उचितानि शुभानि मृदूनि भूषणानि दत्त्वा "ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा" इत्य् उपवीतं दत्त्वा "शन्नो देवीर्" इत्य् आचमनीयं दत्त्वा

"गन्धद्वाराम्" इति गन्धान् दत्त्वा "आयनेत" इति पुष्पाणि दत्त्वा "जितन्त" इति धूपं दत्त्वा "उद्दीप्यस्वे"ति दीपं दत्त्वा प्रणवेनाचमनीयं दत्त्वा

[[138]]

"इदं विष्णुर्" इति मुख-वासं दत्त्वा "तद् विष्णोर्" इति ताम्बूलं दत्त्वा "स्वादुपवस्वे"त्य् आचमनीयं दत्त्वा "आत्वाहार्षम्" इति नीराजनं दत्त्वा श्रुति-सुखैः स्तोत्रैर् अभिष्टूय एवं श्र्य-आदि-देवीनां तत्-तन्-मन्त्रेण दत्त्वा

सात्त्विक-त्यागादि③

ओं भगवान् एव स्व-नियाम्य-स्व-रूप-स्थिति-प्रवृत्ति-स्व-शेषतैक-रसेनानेनात्मना स्वकीयैश् च देहेन्द्रियान्तः-करणैः स्वकीय-कल्याणतम-द्रव्यमयान् औपचारिक-सांस्पर्शिकाभ्यवहारिकादि-समस्त-भोगान् अतिप्रभूतान् अतिप्रियतमान् अतिसमग्रान् अत्यन्त-भक्ति-कृतान् अखिल-परिजन-परिच्छदान्विताय स्वस्मै स्व-प्रीतये स्वयम् एव प्रतिपादितवान्

इत्य् अनुसन्धाय

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुरात्म्य-भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन इज्याख्येन भगवत्-कर्मणा भगवान् प्रीयतां वासुदेव

इत्य् अनुसन्धाय

मनोबुद्ध्य्-अभिमानेन सह न्यस्य धरा-तले ।
कूर्मवच्-चतुरः पादान् शिरस् तत्रैव पञ्चमम् ॥
प्रदक्षिण-समेतेन ह्य् एवं रूपेण सर्वदा ।
अष्टाङ्गेन नमस्कृत्य ह्य् उपविश्याग्रतो विभोः ॥

इत्य् उक्ताष्टाङ्ग-प्रणामेन भगवन्तं प्रणम्य "अखिले"त्यादिना शरणम् उपगच्छेत् ।

उद्धासनम्③

ततश्च च विष्णु-गायत्र्या ऽर्घ्यं दत्त्वा "यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नम्" इति सूक्तेनोपस्थानं कृत्वा "तद् विष्णोर्" इति द्वाभ्यां प्रणम्य मन्त्र-रत्नेन स्वात्मानं निवेद्य

ओं भगवन् ! मन्त्र-मूर्ते ! स्व-पदम् आसादय

इत्थं उद्धरिण्या ऽर्घ्य-जलम् आदाय भगवन्-मूर्ध्नि किञ्चित् प्रदाय आवाहन-रीत्या बिम्बात् भगवन्तं स्व-हृदये उद्भास्य

क्षमापणम् ③

गन्ध-पुष्प-धूप-दीपैर् नैवेद्यादिभिः पञ्चोपचारैर् हृदय-पुण्डरीक-स्थं भगवन्तम् अभ्यर्च्य

[[139]]

उपचारापदेशेन मयैव विहितान् प्रभो ।
अपचारान् अ-शेषांश्च क्षमस्व पुरुषोत्तम ॥
अज्ञानाद् अथवा ज्ञानात् अ-शुभं यत् कृतं मया ।
क्षन्तुम् अर्हसि तत् सर्वं दास्येनैव ग्रहाण माम् ॥
ज्ञानतो ऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं मया ।
तत् सर्वं पूर्णम् एवास्तु तृप्तो भवतु सर्वदा ॥
ओम् अच्युत जगन्-नाथ मन्त्र-मूर्ते सनातन ।
रक्ष मां पुण्डरीकाक्ष स्वापराधं क्षमस्व च ॥
मन्त्र-हीनं क्रिया-हीनं भक्ति-हीनं जनार्दन ।
यत् पूजितं मया देव परिपूर्णं तद् अस्तु ते ॥
पन्नगाधीश-पर्यङ्के रमा-हस्तोपधानिते ।
सुखं शेष्व रमाधीश सुदर्शन सुरक्षित ॥

इति विज्ञाप्य

पिधानादि ③

"यत इन्द्रेत्य्" आदि-षड्भिर् ऋग्भि रक्षां प्रकल्प्य प्रणवेन दिव्य-कवाटम् आबध्य

शङ्ख-चक्र-गदा-मुख्य-दिव्यायुध-गणस् सदो ।
श्री-श-रक्षा-विधानाय शक्त्या जाग्रत जाग्रत ॥

इत्थं अनुसन्धाय प्रणम्य "गौरी मिमाये"ति यवनिकां प्रसार्य पूजां समापयेत् ।

[[140]]

अङ्ग-सङ्ग्रहः ③

एवम्

आवाहन-नमस्कार-प्रत्युत्थान-पुष्पाञ्जलि-स्वागत-नित्यासन-पाद-पीठिका-अर्घ्य-
पाद्य-प्रतिग्रह-पाद्य-प्लोताभिमर्शन-चन्दन-क्षोद-वारि-चरणालेपनम् आचमनीय-
प्रतिग्रहाचमन-चन्दनालेपन-पुष्प-माल्य-धूप-दीप-मधुपर्क-घन-सार-नाग-वल्ली-
पादुका-प्रदान-स्नानासन-शाटिका-हन्त-काष्ठादर्श-जिह्वा-निर्लेखन-गण्डूष-ताम्बूल-
वस्त्राभ्यङ्ग-मौलि-माला--ताल-वृन्त--चन्दनोद्वर्तन-गन्धामलक-वारि-कङ्कत-
रजनी-स्नान-वस्त्र-गन्धानुलेपनोत्तरीय-पवित्र-नृत्त-गीत-वाद्य-सहस्र-धारा-स्नापन-
नीराजन-शिरः-प्लोतोष्णीष-प्लोत-वस्त्राङ्गाभिमर्शन-वस्त्रोपवीतोत्तरीय-
पादुकालङ्कारासन--शिरस्-त्राण--पीत-कौशेयापाद-मस्तक-कर्पूरालेपन-
कस्तूरिका-मृग-मद-चन्दनानुलेपन-चामर-व्यूह-वीजन-कुङ्कुमालेपन-गन्ध--नाना-
विध--भूषण-ब्रह्म-सूत्रोत्तरीय-मौलि-माला--बाहु-माला--श्वेत-मृत्तिकोर्ध्व-पुण्ड्र-
धारण--श्री-चूर्ण-धारणाञ्जन-धारण--पुष्पाञ्जलि-प्रदान--दर्पण-ताम्बूल-धूप-दीप-
-शालि-तण्डुलादि--मात्रादान-स्वाध्यायाध्ययन--स्वर्ण-दान--नाट्य-वेणु-गान--वीणा-
वादन--मङ्गल-पाठ--नीराजन-पञ्च-पिण्ड-प्रक्षेपण-यात्रासनोपानच्-चामर-
मुक्तातप-वारण--मयूर-पिञ्छ--व्यजन-ताल-वृन्त--रथ-गजाश्व-शिबिकायान-
वैनतेय-ध्वज-क्रीडा-यष्टि-ताम्बूल-क्रीडा-फल-समृद्धि-भोज्यासन--मधु-पर्क--
ताम्बूल-पाद्याचमनार्हणाम्भः पायसान्न-मुद्गान्न-गुडोदन--दध्य-ओदन--माषोदन-
तिलोदन-मरीच्य-ओदन--सर्षपोदन-पाद्य-पानक-पानीय-मुख-पाणि-पाद-शोधन-
हस्त-शाटिका-एला-चन्दन-क्षोद-वारि--कर-शोधन-मन्त्रासन-चन्दनालेपन-
माल्यापूप-पृथुक-सक्तु--तिल-पिण्ड--फल-मथित-पानीय--नालि-केराम्बु--ताम्बूल-
पर्यङ्कासन-प्रदक्षिण-नमस्कार-स्तुत्य-आत्म-निवेदनार्घ्योद्वासनात्म-समर्पणानि

इत्य् अष्टा-विंशत्य्-उत्तर-शतोपचारैः तत्-तन्-मन्त्रैर् अष्टधा ऽऽवृत्त-पुरुष-सूक्त-ऋग्भिः विष्णु-
गायत्र्या वा "तद् विष्णोर्" इत्य् आदिभिर् वैष्णवैर् मन्त्रैर् वा पूजां कुर्यात् ।

[[141]]

अधोक्तानाम् उपचारणाम् एतेष्व् अन्तर्भावो वेदितव्यः । एतावत् कर्तुम् अ-शक्तस् तु

आवाहन-नमस्कार--स-पर्यासन--पाद-पीठार्घ्य-पाद्याचमन--मुख-वास-ताम्बूल--
पादुका-स्नानासन--स्नान-शाटिका--दन्त-काष्ठ--जिह्वा-निर्लेखन--तैलाभ्यञ्जनाङ्ग-
मर्दन-गन्धामलक-स्नान--पञ्च-गव्य-स्नान--कङ्कत-शोधन--रजनी-स्नान--
वस्त्रोत्तरीय-वारि-धारा-सहस्र-स्नान-नीराजन-प्लोत-वस्त्राभिमर्शन-वासो-ब्रह्म-
सूत्रोत्तरीयालङ्कारासन-केश-शोषण-दुकूल-परिधान-गन्ध-द्रव्यानुलेपन-व्यजन-
भूषण--पुष्प-माला--नयनाञ्जन-ताम्बूल-दर्पण-धूप-दीप-मात्रा-दान-वेद-वेदाङ्ग-
पठन-नीराजन-छत्र-चामर-ध्वजोपानद्-वाहन-शिबिका-यान-तूर्य-वाद्य-भोजनासन-

-मधु-पर्क--निवेदनाहरण-मृष्टान्नादि-निवेदन-पान-पानीय-मुख-पाणि-पाद-
शोधनाचमनीय-मन्त्रासनापूपादि-निवेदन-ताम्बूल-पर्यङ्कासन-तद्-उचित-वस्त्र-
भूषणादि-दान-स्तोत्र-पठनानि

इति चतुर्-उत्तर-षष्ठ्य-उपचारैः पूर्वोक्त-तत्-तन्-मन्त्रैः चतुर्-आवृत्त-पुरुष-सूक्त-ऋग्भिः मूल-
मन्त्रेण वा भगवन्तम् अर्चयेत् ।

तत्राशक्तस् तु

आवाहनासनार्घ्य-पाद्याचमन--मुख-वास-ताम्बूल--पादुका-प्रदान--दन्त-धावन--
जिह्वा-निर्लेखन--तैलाभ्यञ्जन--धात्री-स्नान--हरिद्रा-स्नान--वस्त्रोत्तरीय-यज्ञोपवीत-
गन्धालेपन-भूषण-मालाञ्जनादर्श-धूप-दीप-यान-छत्र-चामर-तूर्य-घोष-मधु-
पर्कार्हण-नैवेद्य-निवेदन-भक्ष्य--वस्तु-दान--ताम्बूल-दान--विसर्जनानि

इति द्वा-त्रिंशद् उपचारैः पूर्वोक्त-तत्-तन्-मन्त्रैः द्विर्-आवृत्त-पुरुष-सूक्त-ऋग्भिर् वा मूल-मन्त्रेण
वा भगवन्तम् अर्चयेत् ।

तत्राशक्तस् तु

आवाहन-आसन-अर्घ्य-पाद्याचमन-स्नान-वस्त्र-यज्ञोपवीत-गन्धालेपन-भूषण-माला-
धूप-दीप-मधुपर्क-नैवेद्य-दान-विसर्जनानि

इति षोडशोपचारैः पूर्वोक्त-तत्-तन्-मन्त्रैः पुरुष-सूक्त-ऋग्भिर् वा मूल-मन्त्रेण वा भगवन्तम्
अर्चयेत् ।

[[142]]

तत्राशक्तस् तु "अर्घ्य-गन्ध-पुष्प-धूप-दीपैर्" इति पञ्चोपचारैर् मूल-मन्त्रेण भगवन्तम् अर्चयेत् ।
अर्घ्याद्य-उपचार-षट्के ऽपि प्रत्युपचारं[[?]] मूल-मन्त्र-जपः कार्यः।

"अर्चन्तस्त्वे"त्य् अर्घ्य-जलं,

पुथिव्य्-आत्मना नारायणेन सत्यं गन्धं समर्पयामि । हम् अकाशात्मना वासुदेवेन
ब्रह्म-पुष्पं समर्पयामि । यं वाय्व्-आत्मना सङ्कर्षणेन विद्यां धूपं समर्पयामि । रं तेज
आत्मना प्रद्युम्नेन ज्ञान-दीपं समर्पयामि । वम् अब्-आत्मना ऽनिरुद्धेन आनन्दं नैवेद्यं
समर्पयामि ।

एवं भगवद्-आराधनस्य नित्यत्वेन अवश्य-कर्तव्यत्वात् सविस्तरम् एवाराधनं नित्यं कर्तव्यम् ।
तत्र सर्वात्मना अशक्तश् चेत् पञ्चोपचार-पूजां पुष्पाञ्जलिं वा अवश्यं दद्यात् । एवं
नारायणानुवाकेन विष्णु-सूक्तेन "तद् विष्णोर्" इति मन्त्रेण अन्यैश् च भगवन्-मन्त्रैः पूजा-
विधानं द्रष्टव्यम् ।

अष्टाविंशत्युत्तर-शतोपचाराराधने, चतुष्-षष्ठ्युपचार-सहिताराधने च प्रणवादि-सर्व-मन्त्र-जपः कार्यः । द्वा-त्रिंशत्-षोडश-पञ्चोपचार-सहिताराधनेषु प्रसाद-मन्त्र--अजपा-मन्त्र--प्राण-प्रतिष्ठा-मन्त्र--सङ्कली-करण-न्यास--वैष्णव-मातृका-न्यास--भूत-सृष्टि-न्यास--अष्टाक्षरादि-मन्त्र-विस्तार-न्यासादीनां निवृत्तिः । श्री-भाष्य-कारोक्त-नित्य-प्रकारेण वा न्यासादिकं कुर्यात् ॥

पञ्चोपचार-पक्षे मूल-मन्त्रस्य ऋषि-छन्दो देवतां ध्यात्वा ध्यान-श्लोकम् उक्त्वा यथा-शक्ति जपित्वा चतुष्-कृत्यो ऽष्ट-कृत्यः पूरक-कुम्भक-रेचकार्थं मूल-मन्त्रं जपन् प्राणानायम्य आराधनं कुर्यात् । पुष्पाञ्जलि-पक्षे मन्त्र-रत्न जप एव ।

[[143]]

एवम् आवश्यकानावश्यकदिकं बुद्ध्या विचार्य
अवश्यं यथा-शक्ति भगवत्-समाराधनम् अन्वहं कर्तव्यम् ॥

निर्मात्यम्③

विष्वक्सेन-निवेदितम् अन्नं तत्-परिचारकेभ्यो दत्त्वा जले प्रक्षिपेत् ।
अथवा तद्-गणानुचरो भूत्वा स्वयं भुञ्जीत ।
अथवा विष्वक्सेनस्य आचार्यान्तर-भूतत्वाद् आचार्य-प्रसादत्वेन स्वीकार्यम् ।

०५ वैष्णव-होम-वैश्वदेवौ②

ततो वैष्णव-होमं कृत्वा वैश्व-देव-बलि-हरणं पञ्च-महा-यज्ञांश्च स्व-स्व-सूत्रोक्त-विधिना कुर्यात् ।

॥ अथ वैष्णव-होम-प्रकारः ॥

औपासनाग्निम् उपसमिध्य

पूर्वं परिषेकं कृत्वा

वह्नौ स-परिवारं भगवन्तं ध्यात्वा

अधार-शक्त्यु-आदि-योग-पीठादि-देवानां

प्रणवादि-चतुर्थ्यु-अन्त-नामभिः स्वाहाकारन्तैर् हुत्वा

(सावित्र्यु-अष्टाक्षर-द्वादशाक्षर-षड्-अक्षर-विष्णु-गायत्री-श्री-भूमि-नीला-मन्त्र-रत्नैः

स्वाहाकारान्तैर् हुत्वा)

वसुदेवादि-चतुर-व्यूह-तद्-देवी-केशवादि-नाम-तद्-देवी-मत्स्यादि-दशावतार-नाम-तद्-देवी-

स्वाभीष्टार्चावतार-नाम-तद्-देवी-नामभिः प्रणवादि-चतुर्थ्यु-अन्त-युक्त-स्वाहाकारान्तैर् हुत्वा

किरीटादि-दिव्य-भूषण-सुदर्शनादि-दिव्यायुधानन्त-गरुड-विष्वक्सेन-चण्डादि-कुमुदादि-नामभिः

स्वाहाकारान्तैः प्रणवादि-चतुर्थ्यु-अन्त-युक्तैर् अन्नेनाज्येन समिद्धिर् वा हुत्वा

शक्तिर् अस्ति चेत् पुरुष-सूक्त--श्री-सूक्त--भू-सूक्त--देवीं वाचम् इति वाक्-सूक्त--विष्णु-

सूक्तैः प्रत्यूचं हुत्वा स्विष्ट-कृतं च हुत्वा
उत्तर-परिषेकं कृत्वा
वैश्व-देवादिकं कुर्यात् ॥

[[144]]

एवं कर्तुम् अशक्तश्चेत्

ओम् आधार-शक्त्य्-आदि-योग-पीठान्त-देवेभ्यः स्वाहा ।
ओं परव्यूह-विभवान्तर्याम्य्-अर्चवतारेभ्यः स्वाहा ।
ओं सच्चिद्-आनन्द-रूप-भगवद्-दिव्य-मङ्गल-रूप-विग्रहेभ्यः स्वाहा ।
ओं दिव्य-भूषणायुध-चिह्नेभ्यः स्वाहा ।
ओम् अन्-अन्त-गरुड-विष्वक्सेन-चण्डादि-कुमुदाद्य्-अन्-अन्त-परिजन-परिच्छद-
सहित-अखिल-हेय-प्रत्यनीकानन्त-कल्याण-गुण-श्री-भू-नीला-सहित-श्रीमन्-
नारायणाय स्वाहा ।
अग्नये स्विष्ट-कृते स्वाहा ।

उत्तर-परिषेकादि-पूर्ववत् कृत्वा वैश्व-देवादिकं कुर्यात् ।

०६ भोजन-विधिः ②

शौचान्तम् ③

ततो गो-दोहन-मात्रम् अतिथिं प्रतीक्षमाणः पाणि-पादौ च प्रक्षाल्य द्विर्-आचामेत् । भोजन-
शालायां नाचामेत् । भोजनार्थम् आसने निषण्णे सति यद्य् अन्यो ऽभिवादनं कुर्यात् तदा पुनर्
आचामेत् ।

पात्रसादनान्तम् ③

ततः शुचौ गुप्ते भगवत्-सन्निधौ सविताने प्रदेशे
प्राङ्-मुख इज्या-प्रदेशाभिमुखो वोपविश्य
हस्तयोः पादयोर् आस्ये चेति पञ्चसु स्थलेषु आर्द्रः
मौनम् आस्थितस् सन्
शुचि-भोजन-स्थानं श्लक्ष्णं गो-मयेन
ब्राह्मणस्य चतुर्-अश्रं, क्षत्रियस्य त्रि-कोणं, वैश्यस्य वर्तुलं, शूद्रस्य अर्ध-चन्द्राकारम् इत्य् एवं
प्रकारेण पात्रान्यूनाधिकम् उपलिप्य

तत्र सुवर्ण-रजत-कांस्य--ब्रह्म-पत्र--जलज--पद्म-पत्र--पलाश-पत्र--कदली-पत्र--पनसाम्र-
नालिकेर--बिल्व-पत्राद्य--अन्यतरं प्रशस्तं पत्रं विशोधितं निक्षिप्य

ध्यान-जपौ ③

वैश्वानर-ब्रह्म ध्यायेत् ।

"पुनर्म[[??]] आत्मा पुनरायुर्" इत्य् ऋचं मूल-मन्त्रं च जपित्वा

छान्दोग्योपनिषद्-अधीतान् "प्राचीन-शाखा औपमन्यव" इत्य् आदि-चतुर्-दश-खण्डां जपेत् ।

अशक्तश् चेद् अन्-अन्तापरिच्छिन्नाप्रमेय--स्व-रूप--ध्यानार्थं नाभेर् उपरि प्रादेश-मात्र-
विमितं[[??]]

सुतेजो विश्व-रूप-पृथग् वर्त्म-बहुल-रयि[[??]]-प्रतिष्ठा-नामक-स्वर्गादित्य-वाय्व्-
आकाश-जल-पृथिवी-रूपी-मूर्धा-चक्षुः-प्राण-मध्य-काय-लिङ्ग-पाद-विशिष्टं बर्हिर्
गार्ह-पत्य-दक्षिणाग्न्य्-आहवनीय-रूपित-लोम-हृदय-मनो-विशिष्टं परमात्मानं
वैश्वानरं ध्यायामि ।

न्यासः ③

पूर्वोक्त-पञ्चोपचार-मन्त्रैर् अर्घ्य-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्यैर् अभ्यर्च्य देहे ऽप्य् एवं न्यसेत् ।

[[145]]

यथा स्व-शरीरं परमात्म-वैश्वानर-स्व-रूपं ध्यात्वा

मूर्ध्नि

ओं सुतेजस् संज्ञ-स्वर्गाय नमः ।

नेत्रयोः

ओं विश्व-रूपाह्वय आदित्याय नमः ।

नासिकयोः

पृथक् वर्त्माख्य-वायवे नमः ।

कण्ठाद् आरभ्य नाभि-पर्यन्तं

ओं बहुल-संज्ञकाकाशाय नमः

इति व्यापकत्वेन न्यसेत् । गुह्ये

। ओं रयि-संज्ञक-जलाय नमः ।

पादयोः

। ओं प्रतिष्ठा-संज्ञक-पृथिव्यै नमः ।

शिरः-प्रभृति-पाद-पर्यन्त-स्थ-रोमसु व्यापकत्वेन हस्ताभ्याम्

। ओं बर्हिभ्यां नमः ।

हृदये

। ओं गार्ह-पत्याय नमः ।

मनसि

। ओम् अन्वाहार्य-पचनाय नमः ।

वक्त्रे

। ओम् आहवनीयाय नमः ।

इति विन्यस्य

परिवेषणादि③

अन्न-पात्रे दर्व्या निधापयेत्, न तु हस्तेन । "अन्न-पते ऽन्नस्य नो देही"त्य् ऋचा "भूरन्नमग्नये पृथिव्यै स्वाहे"त्य् अनुवाकेन मूल-मन्त्रेण

। अन्नाय नमः अन्नदाय नमः अन्न-पतये नमः

इति प्रणमेत् ।

परिषेचनान्तम्③

ततः पादाग्राभ्यां पादाग्रेण वा भूमिं स्पृशन् महा-व्याहृतीभिर् अन्न-युक्तं तत्-पात्रं प्रदक्षिणं परिषिच्य अन्नम् आज्येनाभिघार्य "अहमस्मी"त्य् अन्न-सूक्तं "यो ब्रह्मे"ति घृत-सूक्तम् "आयुर्दा अग्न" इत्य् ऋचं वा "शुक्रम् असि ज्योतिर् असि तेजो ऽसी"ति यजुर् वा "उरुविष्णो विक्रमस्वे"त्य् ऋचं वा घृतम् अन्नं च स्पृशन् जपित्वा "सत्यन्त्वर्तेने"त्य् अन्नं परिषिच्य

मूल-मन्त्रोणाभिमन्त्र्य आभोजनान्तं तर्जनी-मध्यमाङ्गुष्ठैः पात्रं स्पृशन् "अमृतोपस्तरणमसी"ति
भगवद्-दिव्य-पाद-पद्म-सलिलं पीत्वा

ओं अन्-अन्तापरिच्छिन्नाप्रमेय-स्व-रूपाय ध्यानार्थं नाभेर् उपरि प्रादेश-मात्र-
विमिताय[[?]] सुतेजो विश्व-रूप-पृथग् वर्त्म-बहुल-रयि-प्रतिष्ठा-नामक-
स्वर्गादित्य-वाय्व्-आकाश-जल-पृथिवी-रूप-मूर्धा-चक्षुः-प्राण-मध्य-काय-लिङ्ग-
पाद-विशिष्टाय बर्हिर् गार्ह-पत्य-दक्षिणाग्न्य्-आहवनीय-रूपित-लोम-हृदय-मनो-
वदन-विशिष्टाय परमात्मने वैश्वानराय स्वाहा ।

यद् वा

सुतेजः-प्रभृति-नामक-द्यु-मूर्धत्वादि-विशिष्ट-परमात्मने वैश्वानराय स्वाहा ।

[[146]]

प्राणान्नि-होत्र-प्रकारः③

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहम् आश्रितः ।
प्राणापान-समायुक्तः पचाम्य् अन्नं चतुर्-विधम् ॥

इति श्लोकं जपेत् ।

प्रणेनिविष्टो ऽमृतं जुहोमि प्राणाय स्वाहा

इत्य् आदि-पञ्चभिर् मन्त्रैः मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैः गृहीतेनान्नेन दशन-स्पृष्टि-रहिताः पञ्च-
प्राणाहुतीर् भगवन्तं ध्यायन् हुत्वा शेषम् अत्र व्यञ्जनैर् युतं यथा-क्रमं भुञ्जीत न पात्रं मुञ्चेत् ।
प्राणाहुत्य्-अन्-अन्तरं मुञ्चेद् वा । अत्र प्रतिकबलं गोविदं कीर्तयेत् ।

खादनम्③

भगवन्-निवेदितेनैव प्राणाहुतीः कृत्वा
विष्वक्सेन-प्रमुखाचार्य-निवेदितं वैश्व-देव-शिष्टं च भगवन्-निवेदितेन सहैव भुञ्जीत । उच्छिष्टे
घृत-सेचनं न दद्यात् । प्राणाहुतेः पूर्वं लवणान्वित-व्यञ्जनादिकं न दद्यात् । दक्षिण-पार्श्वं
आपोशनं कुर्यात् । वामे न कुर्यात् । आपोशनार्थ-जले पूरिते पुनर् न पूरयेत् । आपोशनार्थं स्वयम्
एव करे जलं न दद्यात् । करे आपोशने दत्ते आशीर्-वादं न कुर्यात् । तं प्रत्यपि स्वस्ति-वाचनं न
कुर्युः । परिषेचन-शिष्ट-कर-स्थितम् अम्बु न पिबेत् । परिषेचन-काले हस्तेन अन्नं न लङ्घयेत् ।
हस्तेन लङ्घितम् अन्नं न भुञ्जीत ।

उत्तरापोशनं कृत्वा न भुञ्जीत ।

[[147]]

उत्तरापोशनात् पूर्वं नोत्तिष्ठेत् ।

पीतावशिष्ट-जलं न पिबेत् ।

यदि पिबेत् भूमौ किञ्चिद् विनिस्त्राव्य पिबेत् ।

पान-काले पानीय-पात्रं यावद् भूमौ न निक्षिपेत् तावत् तत्-पानीयम् अन्-उच्छिष्टं भवेत् ।

आस्येन वाम-हस्तेन शय्यायां अन्य-करेण तिष्ठन् वा पाणि-नख-स्पृष्टं तोयं न पिबेत् । नायम्

आपदि । भोजन-काले वाम-हस्तेन जल-पात्रम् उद्धृत्य जलं पिबेत् । दक्षिणं पाणिं न संयुज्यात् ।

हस्तेन जलं न पिबेत् जलं पिबतः भोजन-भाजने तोये पतिते तद्-अन्नं न भुञ्जीत । पान-पात्रं

दक्षिण-पार्श्वं निदध्यात् । न तु वामे । नालिकेरोदकं कांस्य-पात्रे, घृत-व्यतिरिक्तं गव्यं मधु च

ताम्र-पात्रे च न पिबेत् । जलादिकं शब्देन न पिबेत् । न भुञ्जीत असद्-वाचाक्रन्दनं, क्रोधम्

अन्य-चिन्तनं शिशूनां भर्त्सनं श्व-चण्डालादि-दर्शनं कुर्वन् ।

स्त्रीषु पश्यत्सु न भुञ्जीत । शुचिषु अन्-अश्रत्सु च पश्यत्सु न भुञ्जीत । यदि पतितादिषु

पश्यत्सु भुञ्जीत तदा स्नात्वा "मानस्तोके"त्य ऋचं जपेत् । भिषग्वार्धुषिक-देवलक-शूद्रादीनाम्

अन्नं न भुञ्जीत । भुञ्जानो ऽन्यं स्पृशेच् चेत् तद्-अन्नं न भुञ्जीत ।

इत्य् आदि-विधि-निषेध-परामर्श-पूर्वकं शास्त्रोक्त-नियम-युक्तस् सन् भोजनं कृत्वा

उत्तरापोशनादि③

"अमृतापिधानमसी"ति भगवद्-दिव्य-पाद-जलं पीत्वा शिष्ट-जलं

रौरवे ऽपुण्य-निलये पद्मार्बुद-निवासिनाम् ।

अर्थिनाम् उदकं दत्तम् अक्षय्यम् उपतिष्ठतु ॥

इति मन्त्रेण भूमौ त्यजेत् । उत्तरापोशनार्थं पूर्वं हस्तं न प्रक्षालयेत् ।

ततः उत्थाय गृहाङ्कणं गत्वा शूद्रादीन् अ-पश्यन् अ-स्पृशन् आसीनः वाम-पार्श्वं षोडश-गण्डूषान् विसृजेत् ।

न तिष्ठन् गण्डूषान् कुर्यात् । गण्डूष-काले मुख-स्थं जलं न पिबेत् । भुक्ति-पात्रे तूद्धृते मण्डल-शोधने च कृते प्राङ्-मुख उदङ्-मुखो वा आसने स्थित्वा द्विर्-आचम्य

स्वस्थः प्रशान्त-चित्तो ऽभीष्ट-देवता-स्मरणं कृत्वा

[[148]]

अङ्गुष्ठ-मात्रः पुरुषो ऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः ।

ईशस् सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्व-भुक्

इत् आचमन-शिष्टं हस्त-जलं दक्षिण-पादाङ्गुष्ठे निस्त्राव्य "श्रद्धायां प्राणे निविश्यामृतं हुतम्" इति हुतानुमन्त्रणं कृत्वा "ओं ब्रह्मणि म आत्मा ऽमृतत्वाये"ति स्वात्मानं ब्रह्मणि योजयेत् ।

प्राणानां ग्रन्थिरसि रुद्रो मा विशान्तकस् तेनान्नेनाप्यायस्व

इति नाभि-देशं विमृश्य आदित्यम् ईक्षेत इति ।

ताम्बूलान्तम्③

भोजनानन्तर-कर्तव्य-कार्य-क्रमः ॥

आगस्तिर् अग्निर् बडबानलश् च
भुक्तं मया ऽन्नं जरयत् अशेषम् ।
सुखं च मे तत्-परिणाम-सम्भवं
यच्छ त्व अरोगं मम चास्तु देहे ॥
विष्णुरत्ता तथैवान्नं परिणामश् च वै यतः ।
सत्येन तेन मे भुक्तं जीर्यत् अन्नम् इदं तथा ॥

इत् उच्चार्य
स्व-हस्तेनोदरं परिमृश्य
श्री-वैष्णवानां ताम्बूलं दत्त्वा
स्वयम् अपि ताम्बूल-चर्वणं कुर्यात् ।

मुखे पूर्वं पर्णं निधाय
पश्चात् क्रमुकं निदध्यात् ।

पर्ण-मूलं पर्णाग्रं सीरां चूर्ण-पर्णं च वर्जयेत् । भुक्त्वा ऽऽर्द्र-पादो ऽगाराद् बहिर् न व्रजेत् ।

[[149]]

०७ इज्या-समापन-सात्त्विक-त्यागः②

ततः पाणि-पादौ प्रक्षाल्याचम्य
प्रयतो भगवन्-मन्दिरं गत्वा प्रणम्य

भगवान् एव स्व-शेष-भूतेन मया स्वीयैर् एव देहेन्द्रियान्तः-करणैः स्वकीय-
कल्याणतम-द्रव्यमयान् औपचारिक-सांस्पर्शिकाभ्यवहारिकादि-समस्त-भोगान्
अतिप्रियतमान् अतिप्रभूतान् अतिसमग्रान् अत्यन्त-भक्ति-कृतान् अखिल-परिजन-
परिच्छदान्विताय स्वस्मै स्व-प्रीतये स्वयम् एव प्रतिपादितवान्

इत्थ् अनुसन्धाय

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुरात्म्य-
भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन इज्यया भगवत्-कर्मणा भगवान् प्रीयतां वासुदेव

इति इज्यां भगवते समर्पयेत्

इति श्रीमद्-रामानुज-सिद्धान्त-स्थापनाचार्य-शत-क्रतु-चतुर्-वेदि- श्री-निवासाचार्य-विरचिते
पञ्च-काल-क्रिया-दीपे इज्या-निरूपणाख्यस् तृतीयः परिच्छेदः

**

1. पद्मापर्शन[[??]] O. M.

2. भोगात् O. M.

3. श्रोणी-भूषादि-वेषो [[??]]- O.M.

4. श्रोणी-भूषादि-वेषो [[??]]- O.M.

०४ स्वाध्यायः①

०१ स्वाध्यायार्थ-सङ्कल्पः②

अथ स्वाध्यायः अथ स्वाध्यायं व्याख्यास्यामः

अह्णश् चतुर्थ-काले सम्प्राप्ते

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुर्-
आत्म्य-भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन स्वाध्यायेन भगवत्-कर्मणा भगवन्तम्
अर्चयिष्यामि

इति स्वाध्यायं सङ्कल्प्य

ओं भगवतो बलेन भगवतो वीर्येण भगवतस् तेजसा भगवतः कर्मणा भगवन्तं
वासुदेवम् अर्चयिष्यामि

इत्य् अनुसन्धाय स्वागत-वेद-वाक्यार्थ-व्यक्तीकरणाय विदित-स-कल-वेद-तद्-अर्थानां स्व-योग-
महिम-साक्षात् कृत-परावर-तत्त्व-याथार्थ्यानां मनु-पराशर-पाराशर्य-शुक-शौनकादीनां महर्षीणां
प्रबन्धान् श्रवण-मनन-जपादिभिर् अभ्यसेत् ।

०२ श्रवण-मनन-प्रवचन-जपादि②

स्वाध्याय-काल-कर्तव्य-कार्यक्रमः॥ भगवत्-प्रीणन-चित्त-रञ्जकेतिहास-पुराण-स्तोत्र-निगमान्त-
द्वय-व्यापक-मन्त्रादीनां श्रवण-मनन-प्रवचन-जपादि-विधिः ॥

उपबृहद् निरपेक्षस्य उपबृंहणीय-वेद-भाग-जप एव युक्तः । तत्रापि साक्षाद् भगवत्-प्रतिपादक
एव भागो जप्यः । सङ्ग्रह-रुचीनां महा-मन्त्र-शक्तानां च सर्व-सार-भूत-व्यापक-मन्त्र-जप एव
युक्तः । शिष्य-गुरु-स-ब्रह्म-चारि-श्रेयो-ऽर्थिभिर् अन्-असूयिभिर् वीत-रागैस् सह तत्त्व-निर्णयाय
वादः स्वाध्याय-काल एव प्रवर्तनीयः । तद् इह भगवत्-प्रीणन-स्व-चित्त-रञ्जकेतिहास-पुराण-
स्तोत्र-निगमान्त-द्वय-व्यापकादीनां श्रवण-मनन-प्रवचन-जपादयो वा संवादादयश् च यौगिक-
ज्ञान-प्रदीप-स्नेहायमाना विविध-वाचिक-पापोदय-प्रतिबन्धिनश् च सर्वे व्यापाराः यथाधिकारं
यथा-सम्भवं यथा-विधि सम्भूय पृथग् भूय वा अनुष्ठेया भवन्ति । शमाद्य्-उपयुक्त-शब्द-
परिशीलनं कुर्याद् इति स्वाध्याय-सारः ॥

अथ बन्धु-जन-कार्यम् आत्म-कार्यं गृह-क्षेत्रादि-चिन्तां च कृत्वा

[[151]]

०३ सायं-सन्ध्योपासन-विधिः ②

लोहितायति भास्करे ग्रामाद् बहिर् नदी-तटाकादि-तीरं गतश् शुचिर् दर्भ-पाणिः पाणी-पादौ च प्रक्षाल्य प्राङ्-मुखः प्रत्यङ्-मुखो वा शुचौ देशे निषण्णस् स्वाचान्तः "सायं सन्ध्याम् उपासिष्ये" इति सङ्कल्प्य आपोहिष्ठादिभिर् मार्जयित्वा "अग्निश्चमामन्युश्च" त् अपः पीत्वा ऽऽआचम्य सुरभि-मत्या आपोहिष्ठीयाभिः "हिरण्य-वर्णाश् शुचयः" "पवमानस् सुवर्जनः" इत्य् अनुवाकाभ्यां च मार्जयित्वा अर्धास्तमिते रवौ प्रत्यङ्-मुखस् तिष्ठन्-आसीनो वा प्रणव-व्याहृति-गायत्रीभिर् अभिमन्त्रितम् उदकम् ऊर्ध्वं त्रिर् उत्क्षिप्य प्रायश्चित्तार्घ्यं च दत्त्वा प्रदक्षिणी-कृत्य प्रणव-व्याहृतीभिः परिषिच्य "असाव् आदित्यो ब्रह्मे"ति ध्यायन् आत्मानम् उपलभ्य उपविश्य द्विर् आचम्य केशवादीन् तर्पयित्वा ऽऽचम्य भगवन्तं विष्णुं ध्यायन् गायत्रीं पूर्ववज्-जप्त्योपस्थाय "इमं मे वरुणे" त् आदिभिः पञ्चभिर् ऋग्भिर् नारायणोपनिषदा च वारुणीं सन्ध्याम् उपस्थाय सर्वम् अन्यत् यथा-पूर्वं कुर्यात् ।

०४ भगवद्-अर्चनादि ②

ततो भगवद्-अर्चनं पूर्ववद् यथा-शक्ति कृत्वा वैश्व-देव-बलि-हरणम् अतिथि-पूजां च यथा-शक्ति कृत्वा भोजनं च पूर्ववत् कुर्यात् । "ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्जामी"ति परिषेचन-मन्त्र-भेदः ।

केनचिन् निमित्तेन विलुप्ते ऽपि भोजने प्राणाग्नि-होत्र-मन्त्र-जपं कुर्यात् ।

०५ स्वाध्यायः ②

ततश् च रात्रि-योग्य-स्वाध्यायं यथा-शक्ति कुर्यात् ॥

ननु

। प्रदोषे च भुक्त्वा प्रोदकयोश् च पाण्योर् नाधीयत

इत्य् आपस्तम्ब-वचनात् रात्रौ भुक्त्वा नाधीयीत, अधीत्यैव भुञ्जीत इत्य् अर्थो लभ्यते । तत् कथं भोजनानन्तरम् अध्ययनम् उच्यते इति चेत्, अत्रोत्तरम् प्रदोषे त्रयो-दश्यादि-प्रदोषे नाधीयीत, भुक्त्वा प्रोदकयोश् च पाण्योर् नाधीयीत इत्य् एवार्थ इति ।

। भुक्त्वा ऽऽद्र-पाणिः अम्भो ऽन्तर्

इति याज्ञवल्क्यादि-वचनं

। भुक्त्वा यावद् आर्द्र-पाणिस् तावन् नाधीयीत

इति विज्ञानेश्वरेण व्याख्यातम् ।

न भुक्त-मात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके

इति मनु-वचनं

भोजनानन्तरं आर्द्र-पाणिर् नाधीयीत

इति कवि-वल्लभेन व्याख्यातम् ।

भुक्त्वा आर्द्र-पाणिर् इत्युक्तेः अ-भुक्त्वा आर्द्र-पाणिर् अपि अधीयीत

इति न्याय-विदो वदन्ति ।

मित-सन्ध्यस् त्रयो-दश्यां संस्मरन् नात्मनो हितम् ।

अन्हो ऽष्टांशेन संयुक्तं राज्य-अर्धं मौनम् आचरेत् ॥

इति स्मृत्यु-अर्णवे त्रयो-दश्यां

तत्-काल-नियत-सावित्री-होमादि-व्यतिरिक्त-दशायां

प्रदोषाख्य-काले मौन-विधानात्

मन्त्रादिकम् अपि वर्जनीयम् ।

विष्व-अयनादिषु तु स्वाध्याय-जप-मन्त्रं निषिध्यते । मन्त्र-जपादिकं तु विधीयते । एवं गुरोस् समारभ्य मन्त्रानुष्ठानम् आचरेत् ।

अष्टाक्षरं जपेद् विद्वान् अष्ट-सहस्रकम्

इति बोधायनेन अष्टाक्षर-जपस्य नित्यत्वम् उक्तम् ।

०६ समापन-सात्त्विक-त्यागः②

ततो भगवन्-मन्दिरं गत्वा प्रणम्य

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्यु-अर्थेन महा-विभूति-चातुर्-
आत्म्य-भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन स्वाध्यायेन भगवतः कर्मणा भगवान्
प्रीयतां वासुदेव

इति स्वाध्यायं भगवते समर्पयेत्॥

इति श्रीमद्-रामानुज-सिद्धान्त-स्थापनाचार्य-शत-क्रतु-चतुर्-वेद-श्री-निवासाचार्य-विरचिते
पञ्च-काल-क्रिया-दीपे स्वाध्याय-निरूपणाख्यश् चतुर्थः परिच्छेदः ॥

[[153]]

०५ योगः①

०१ योगार्थ-सङ्कल्पः②

अथ योगः अथ योगं व्याख्यास्यामः

अर्ध-रात्रे समुत्थाय जित-निद्रो जितेन्द्रियो जित-श्रमः पाणि-पादौ च प्रक्षाल्य द्विर् आचम्य भगवन्-मन्दिरं गत्वा गुरुं भगवन्तं च प्रणम्य भगवत्-सन्निधौ अन्यत्र वा विविक्ते शुचौ देशे कम्बलाद्य-आसने संविश्य

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्य्-अर्थेन महा-विभूति-चातुर्-
आत्म्य-भगवद्-वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन योगेन भगवतः कर्मणा भगवन्तम्
अर्चयिष्यामि

इति योगं सङ्कल्प्य

ओं भगवतो बलेन भगवतो वीर्येण भगवतस् तेजसा भगवतः कर्मणा भगवन्तं
वासुदेवम् अर्चयिष्यामि

इत्य् अनुसन्धाय

०२ समाधिः②

०१ आसनादि③

स्वस्तिक--गो-मुख--पद्म-वीर-सिंह--भद्र-मुख--मयूराख्येषु आसनेषु स्वाभिमतान् केनचिद्
आसनेन स्थित्वा

पूर्वोक्त-प्रकारेण भूत-शुद्धिं कृत्वा

प्राङ्-मुखः काय-शिरो-ग्रीवा सन्धि-वक्षस्-स्थलानि समानि कृत्वा

अक्षिणी नासग्र-न्यस्ते कृत्वा

तालु-तल-स्थां जिह्वां सान्तरे दशनावली च कृत्वा

ओष्ठ-पुटाव् ईषल-लग्नौ कृत्वा

ऊरु-मध्य-प्रदेशयोर् बाहु-कूर्परौ धृत्वा

दक्षिणोत्तरौ पाणी कृत्वा

योग-पट्टेन विग्रहम् अचलं सन्धार्य

अपान-देशं निरुध्य

विषयान्तर-निविष्टं मनस् समाहृत्य

बुद्धौ लीनं कृत्वा
बुद्धिं स्व-गोचरां कृत्वा

०२ धारणम्③

योगानुष्ठान-काले परमात्म-ध्यान-प्रकारः ॥

आत्मनात्मानं समाधाय पूर्वोक्त-प्रकारेण मूल-मन्त्रेण द्वादशाक्षर-विद्याया वा प्राणायामं कुर्वन्
कुम्भक-समये

ध्यायामि परमात्मानं परमानन्द-विग्रहम् ।
गुरूपदेशतो ज्ञेयं पुरुषं कृष्ण-पिङ्गलम् ॥
ब्रह्म-ब्रह्म-पदे चास्मिन् दहराब्ज-ख-मध्यमे ।

इति ध्यात्वा स्वात्म-शरीरकं परमात्मानं भावयेत् ।

[[154]]

यद् वा

हृत्-पद्माष्ट-दलोपेते कन्द-मध्यात् समुत्थिते ।
द्वादशाङ्गुल-नाले ऽस्मिन् चतुर्-अङ्गुलवन्-मुखे ॥
प्राणायामे विकसिते केसरान्वित-कर्णिके ।
वासुदेवं जगन्-नाथं नारायणम् अजं हरिम् ॥
चतुर्-भुजम् उदाराङ्गं शङ्ख-चक्र-गदा-धरम् ।
किरीट-केयूर-धरं पद्म-पत्र-निभेक्षणम् ॥
श्री-वत्स-वक्षस्-संयुक्तं पूर्ण-चन्द्र-निभाननम् ।
पद्मोदर-दलाभासं सुप्रसन्नं शुचि-स्मितम् ॥
शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशं पीत-वाससम् अच्युतम् ।
पद्म-च्छवि-पद-द्वन्द्वं परमात्मानम् ईश्वरम् ॥
प्रभाभिर् भासितं रूपं परितः पुरुषोत्तमम् ।
ध्यायामि मनसा देवं सर्व-भूत-हृदि स्थितम् ॥

इति भगवन्-नारायणं ध्यात्वा

स्वात्म-शरीरकं परमात्मानं भावयेत् ।

यद् वा वैश्वानर-संज्ञकं भगवन्तं नारायणं ध्यात्वा स्वात्म-शरीरकं परमात्मानं भावयेत् ।

[[155]]

यद् वा

आत्मानं सर्व-जगतः पुरुषं हेम-रूपिणम् ।
 हिरण्य-श्मश्रु-केशं च हिरण्मय-नखं हरिम् ॥
 कप्यासाम्बुजवद्-वक्त्रं सृष्टि-स्थित्य्-अन्त-कारणम् ।
 पद्मासन-स्थितं सौम्यं प्रबुद्धाब्-ज-निभाननम् ॥
 पद्मोदर-दलाभाक्षं सर्व-लोकाभय-प्रदम् ।
 विजानन्तं हितान् सर्वान् उन्नमन्तं च धार्मिकात् ॥
 शासयन्तं जगत्-सर्वं ध्यायेल् लौकिक-साक्षिणम् ।

इति भगवन्तं नारायणं आदित्य-मण्डल-मध्य-वर्तिनं ध्यात्वा स्वस्य परमात्मनश् च शरीर-शरीरि-
 भावादि-सम्बन्धं भावयेत् ।

यद् वा

भूवोर् मध्ये ऽन्तर् आत्मानं भा-रूपं सर्व-कारणम् ।
 स्थाणुवन्-मूर्ध-पर्यन्तं मध्य-देहात् समुत्थितम् ॥
 जगत्-कारणम् अ-व्यक्तं ज्वलन्तम् अमितीजसम् ।

इति ध्यात्वा स्वस्य परमात्मनश् च शरीर-शरीरि-भावादि-सम्बन्धं भावयेत् ।

यद् वा

हन्-मध्ये ऽष्ट-दलोपेते कर्णिका-केसरान्विते ।
 उन्निद्र-हृदयाम्भोजे सोम-मण्डल-मध्यमे ॥

[[156]]

स्वात्मानं भास्वराकारं भोक्तृ-रूपिणम् अक्षयम् ।
 सुधा-रसं विमुञ्चद्भिश् शशि-रश्मिभिर् आवृतम् ॥
 षोडशच्छन्द-संयुक्ताच् छिरः-पद्माद् अधो मुखात् ।
 निर्गतामृत-धाराभिः समग्राभिस् समन्ततः ॥
 प्लावितं पुरुषं तत्र चिन्तयामि समाहितः ।
 तेनामृत-रसात् क्लिन्न-साङ्गोपाङ्ग-कलेवरम् ॥
 अहम् एव परं ब्रह्म परमात्मा ऽहम् अ-व्ययः ।

इति भावयेत् ।

यद् वा ततश् च प्रत्यहं आत्मोपजीवनायैवम् अनुस्मरेद् इति श्री-वैकुण्ठ-गद्योक्त-प्रकारेण
 भावयेत् ।

(परव्यूह-विभावाद्यचावतारेषु स्वाभीष्टस्य भगवद्-अवतारस्य मूर्ति-ध्यान-प्रकारः॥)

यद् वा पर-व्यूह-विभवाद्-अर्चावतारेषु स्वाभीष्टस्य भगवद्-अवतारस्य मूर्ति-ध्यानं तत्-तन्-मन्त्रैः
कृत्वा

०३ गति-चिन्तनादि③

आत्म-स्वरूपम्④

अशेष-चिद्-अचिद्-वस्तु-शेषि-भूतस्य अखिल-जगद्-आधारस्य समस्त-जगत्-
सृष्टि-स्थिति-संहारान्तः-प्रवेश-नियमनादि-लीलस्य अखिल-हेय-प्रत्यनीक-
कल्याणकैतानस्य

इतर-समस्त-वस्तु-विलक्षण-अन्-अन्त-ज्ञानानन्दैक-स्व-रूपस्य

स्वाभाविकानवाधिकातिशय-ज्ञान-बलैश्वर्य-शक्ति-तेजस्-सौशील्य-वात्सल्य-
मार्दवार्जव-सौहार्द-साम्य-कारुण्य-माधुर्य-गाम्भीर्योदार्य-स्थैर्य-शौर्य-पराक्रम--सत्य-
काम--सत्य-सङ्कल्प--कृतित्व-कृत-ज्ञताद्-असंख्येय-कल्पाण-गुण-गणौघ-
महार्णवस्य श्रियः पतेर् भगवतो नारायणस्य

अन्-अन्यार्ह-निरुपाधिक-शेष-भूतः देहेन्द्रियादि-व्यतिरिक्तः ज्ञानैक-स्व-रूपः स्वयं
प्रकाशः चेतनो ऽहम्-अर्थः प्रतिक्षेत्रं भिन्नो ऽणुर् नित्य-निर्मलो ज्ञातृत्व-कर्तृत्व-
भोक्तृत्वादि-धर्मवान् बद्धो ऽयं जीवो नित्य-मुक्त-तुल्यतया भगवद्-अनुभव-योग्यो
ऽपि

आध्यात्मिकादि-ताप-त्रय-निरूपणम्④

अन्-आद्य-अ-विद्याकर्म-वासना-रुचि-प्रकृति-सम्बन्धेन तिरोहित-स्व-स्व-रूपः
संसरमाणाध्यात्मिकादि-ताप-त्रयेण पीडितो भवति।

[[157]]

तत्र आध्यात्मिकस् तापो द्वि-विधः । शारीरो मानसश् चेति । शारीरो नाम शिरो-रोग-
प्रतिज्याय-ज्वर-शूल-भगन्दर-गुल्माश्वयधु श्वास-कासाक्षि-रोगातिसार-कुष्ठादि-
व्याधयः।

मानसस् तापो नाम - काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य-भय-द्वेष-शोकासूयादिर्
आधिः । आधिभौतिको नाम मृग-पक्षि-मनुष्य-पिशाचोरग-राक्षस-सरीसृपादि-
जनिता पीडा । आधिदैविको नाम शीतोष्ण-वर्षाम्बु-वैद्युतादि-जनितस् तापः । एवं

ताप-त्रय-पीडितस् सन् गर्भ-जन्म-जरा-ज्ञान-मृत्यु-नरक-जं दुःखम् अनुभवति ।
 गर्भे तावत् बहु-मलावृते उल्ब-संवेष्टितो भुग्न-पृष्ठ-ग्रीवा-स्थि-संहति-रत्य-अम्ल-कटु-
 तीक्ष्णोष्ण-लवण-रूपैर् अतितापिभिर् मातृ-भोजनैर् वर्धमानातिसंवेदना ऽङ्गानां
 प्रसारणाकुञ्चनादाव् अप्य् अशक्तश् शक्नुन्-मूत्र-महा-पङ्कशायी-सम्पिण्डित-सर्व-
 गात्रः दुस्सह-गर्भ-वस-क्लेशान् अनुभवति । ततो जायमानः पुरीषासृङ्-मूत्र-
 शुक्लाविलाननः प्राजापत्य-वायुना पीड्यमानः अधो-मुखतया परिवर्तितः प्रसूति-
 मारुत-बलाद् योनि-यन्त्र-पीडितो ऽतिदुःखितस् सन् अशुचि-प्रस्तरे निपतति । ततो
 मूर्च्छाम् अवाप्य ब्राह्म-वायुना संस्पृष्टो भगवन्-मायया ऽपहत-ज्ञानो भवति । ततः
 कण्डूयने परिवर्तने चाप्य् अशक्तो ऽशुचिः प्रस्तरे सुप्तः कीट-दंशादिभिर् भक्ष्यमाणो
 तेषां निवारणे ऽप्य् अ-समर्थः किम् अपि कार्याकार्यम् अजानन् पशु-समो भूत्वा
 शिश्रोदर-परायणः नरक-हेतु-भूतानि पापनि कर्माणि कुरुते ।

[[158]]

नरकानुभव-प्रकारः ④

असाधु-कर्म-कारिणां नरकानुभव-प्रकारः॥

ततो जरा-जर्जन-देहश् शिथिलावयवः विचलच्-छीर्ण-दशनावलि-स्नायु-सिरावृतो
 दूरं प्रणष्ट-नयनश् शलद्-वपुः प्रकटी-भूत-सर्वास्थिर् अल्पाहारो ऽल्प-चेष्टितो मन्दी-
 भवच् छ्रोत्र-नेत्रः स्रवल्-लालाबिलाननः तत्-क्षणे ऽप्य् अनुभूतानां वस्तूनाम् अप्य्
 अस्मर्ता-सकृद् उच्चरिते ऽपि वाक्ये समुद्भूत-महा-श्रम-वास-कास-महा-यास-
 समुद्भूत-प्रजा-गरो भृत्यादि-पुत्र-दाराणाम् अवमान-बहिष्कृतः प्रक्षीणाखिल-शौचः
 विहाराहार-निस्पृहः परिजनस्यापिहास्यो निर्विण्णाशेष-वाडवो ऽन्यस्मिन् जन्मनि
 अनुभूतम् इव आत्मनि चेष्टितं संस्मरन् अतितापितो भवति ।

ततो मरण-दशायां श्लथ-ग्रीवाङ्घ्रि-हस्तः वेपथुना व्याप्तः मुहुर् ग्लानि-पर-वेशः
 मुहुर् ज्ञान-लवान्वितः हिरण्य-धान्य-तनय-भार्या-भृत्य-गृहादिषु एते कथं
 भविष्यन्तीति अतीव ममताकुलः ।

मर्म-भिन्नौ[[??]] महा-रोगैश् छिद्यमान-सुबन्धनः
 परिवर्तमानताराक्षः हस्त-पादौ मुहुः क्षिपन् ॥
 संशुष्य-माण-ताल्व्-ओष्ठ-पुटः दोषौघैर् निरुद्ध-कण्डः

उदान-श्वास-पीडितः तृषा क्षुधा च पीडितः महता तापेन व्याप्तो यम-किङ्कर-
 पीडितः

एकोत्तर-शतं मृत्युम् अथर्वाणः प्रचक्षते

इत्थं उक्त-प्रकारेण मरण-वेदनाम् अनुभूय क्लेशाद्य-उत्क्रान्तिं प्राप्य यातन-देहं
प्रतिपद्यते ! ततो नरके यम-किङ्करैः पीडितो नाना-विधां दुःख-पद्धतिम् अनुभवति ।

[[159]]

स्वर्ग-प्राप्ति-प्रकारः ④

पुण्य-कर्म-कारिणां धूमादि-मार्गेण स्वर्ग-प्राप्ति-प्रकारः ॥

यस् तु यज्ञादीनि पुण्य-कर्माणि कुरुते स ऐहिकं सुखम् अनुभूय स्वर्ग-सुखानुभवार्थं
गमिष्यन् स्थूल-शरीरात् सूक्ष्म-शरीरं प्राप्य एक-शत-सङ्ख्याकेषु नाडी-भेदेषु ब्रह्म-
नाडी-भेदेन निष्क्रम्य धूम-राज्य-पर-पक्ष-दक्षिणायन-षण्-मास-पितृ-लोकाकाश-
चन्द्र-क्रमेण स्वर्गं प्राप्य इन्द्रादि-शरीरं प्राप्य तत्-तत्-सुकृतानुगुणं कञ्चित् कालम्
अनुभूय

वैकुण्ठ-प्राप्तिः ④

अनन्तरं अर्चिरादि-मार्गेण श्री-वैकुण्ठ-प्राप्ति-प्रकारः ॥

अन्तवत् तु फलं तेषां प्रभवत्य् अल्प-मेधसाम् ।
आब्रह्म-स्तम्ब-पर्यन्ता जगद्-अन्त-व्यवस्थिताः ॥
प्राणिनः कर्म-जनित-संसार-वश-वर्तिनः ।

इत्थं उक्त-प्रकारेण कर्म-शेषानुभवार्थं पुनर् जन्मादि-प्राप्त्य-अर्थं देव-शरीरं विहाय
भूत-सूक्ष्म-शरीरं प्राप्य चन्द्राकाश-वायु-धूमाभ्र-मेघ-वृष्टि-व्रीह्य-आदि-मार्गेणावरुह्य
नरक-तुल्य-पुरुष-शरीरे प्रविश्य रेतसा सह स्त्री-शरीर-शोणित-गते सलिल-बुद्बुदाद्य-
अवस्थां प्राप्य दुस्सह-गर्भ-वास-क्लेशम् अनुभवति ।

पुनर् जायते म्रियते चेत् एवं पुण्य-पापानुरूपेण सुखं दुःखं चानुभवन् चक्र-
परिवृत्त्या परिभ्रमति ।

एवम् अहम् अप्य् अन्-आदि-कालम् आरभ्य संसरमाणो यादृच्छिक-सुकृत-
परिपाकेन जायमान-काले भगवत्-कटाक्ष-विषयी-भूतः सद्-आचार्योपदेशाल् लब्ध-
प्रज्ञः पूर्वानुभूत-सुकृत-दुष्कृत-फलम् अनुस्मृत्य निर्विण्णो ऽभूवम् । ततो भगवति
स्व-रक्षाभर-न्यासं साङ्गम् अनुष्ठितवान् अस्मि । एवं भगवति न्यस्त-भरस्य द्विषत्सु
दुष्कृतं सुहृत्सु सुकृतं च मम एतद्-देहावसाने केवलं भगवद्-दयया अतिप्रबुद्धस्य

भगवन्तम् एवावलोकयतः प्रच्युत पूर्व-संस्कार-मनो-रथस्य मम वाक्-पाणि-पाद-
पायूपस्थाख्येषु कर्मेन्द्रियेषु घ्राण-रसन-चक्षुस्-त्वक्-छोत्राख्येषु ज्ञानेन्द्रियेषु च
मनसा संयुक्तेषु सत्सु, कर्म-ज्ञानेन्द्रिय-संयुक्ते मनसि प्राण-वायुना संयुक्ते सति,
एकादशेन्द्रिय-संयुक्त-प्राण-वायौ जीवात्मना मया संयुक्ते सति प्राणेन्द्रिय-
संयुक्तस्य मम

[[160]]

त्रि-स्थूण-क्षोभ-दशायां स्थूल-देहं विहाय पञ्च-भूत-सूक्ष्म-शरीरं प्राप्तस्य तद्-
अनन्तरम् इन्द्रिय-प्राण-भूत-सूक्ष्म-संयुक्तस्य मम निसर्ग-सुहृदि हार्दे परमात्मनि
श्रमापनयनं प्राप्तस्य अनन्तरं एक-शत-सङ्ख्याकेषु नाडी-भेदेषु धूम-राज्यपर-पक्ष-
दक्षिणायन-षण्-मास-पितृ-लोकाकाश-चन्द्र-रूप-स्वर्ग-मार्गस्य देव-यान-पितृ-
यानोभय-व्यतिरिक्त-नरक-मार्गस्य द्वार-भूतान् शत-सङ्ख्यान् नाडी-विशेषान् न
प्राप्यैव अर्चिरादि-मार्ग-मुख-भूतया मूर्धन्यया शताधिकया ब्रह्म-नाड्या निष्क्रम्य
सूर्य-मण्डलं भित्वा तद्-उपर्य् अर्चिरादि-मार्गेण अर्चिर्-अहः-पूर्व-पक्षोत्तरायण-
संवत्सर-वाय्व्-आदित्य-चन्द्र-वैद्युत-वरुणेन्द्र-प्रजापति-संज्ञैर् अतिवाहिकैस् तत्-
तत्-सीमा-पर्यन्तम् अनुव्रजद्विस् तत्-तत्-लोकेषु भगवच्च-छास्त्रोक्त-भोगानुभव-
पूर्वकं स-बहुमानं नीतस्य मम

लोकं वैकुण्ठ-नामानं दिव्यं षाड्गुण्य-संयुतम् ।
अ-वैष्णवानाम् अ-प्राप्यं गुण-त्रय-विवर्जितम् ॥
नित्य-सिद्धैस् समाकीर्णं तन्मयैः पाचकालिकैः ।
सभा-प्रसाद-संयुक्तं वनैश् चोपवनैश् शुभम् ॥
वापी-कूप-तटाकैश् च वृक्ष-षण्डैश् च मण्डितम् ।
अ-प्राकृतं सुरैर् वन्द्यं अयुतार्क-समप्रभम् ॥
प्रकृष्ट-सत्त्व-राशिं तं कदा द्रक्ष्यामि चक्षुषा ।

इत्यु उक्त-प्रकारेण बहु-कालं द्रष्टुम् अभिलषितं श्री-वैकुण्ठ-लोकं प्राप्य
कर्म-फल-भोगार्थं गत्यर्थम् एव विद्यया स्थापितम् एतावन्तं कालम् अनुवृत्तं सूक्ष्म-
शरीरं विहाय विरजां मनसा तीर्त्वा
अ-प्राकृतं शुद्ध-सत्त्वमयं दिव्यं शरीरं लब्ध्वा
ऐरंमद-सरस्-तीरे सोम-सवन-संज्ञाश्वत्थ-समीपं गत्वा

[[161]]

मालाञ्जन-चूर्ण-वासो-भूषण-हस्ताभिः पञ्च-शत-सङ्ख्याभिः प्रत्युत्थिताभिर्
अप्सरोभिः ब्रह्मालङ्कारैर् अलङ्कृतस्य ब्रह्म-गन्ध-रस-तेजांसि प्राप्तस्य
विष्वक्सेनादिभिर् नित्यैः पराङ्कुश-परकालादिभिर् अस्मद्-आचार्यैर् मुक्तैश् च
प्रत्युत्थितस्य मम गोपुर-समीपं प्राप्य इन्द्र-प्रजा-पति-संज्ञौ द्वार-पालौ दृष्ट्वा
अप्राकृतान् राजोपचारान् प्राप्य आनन्दमय-मण्डप-रत्नं प्रविश्य

नित्य-मुक्त-विराजितां दिव्यां सभां प्रणम्य
 नित्यैर् मुक्तैस् सेव्यमानं शेष-भोगे श्रिया सहासीनं निरतिशय-भोभ्यं भगवन्तं
 श्रीमन्-नारायणं दृष्ट्वा
 तच्-चरणारविन्द-युगलं प्रणम्योत्थाय पुनः पुनः प्रणम्य
 भगवत्-समान-भोग-लक्षणं सायुज्यं प्राप्य
 स्व-समान-जातीय-नित्य-मुक्तान्तर्भूतम्य मम समस्त-प्रतिबन्धक-निवृत्ति-पूर्वकम्
 अपहत-पाप्मत्यादि-स्व-स्व-रूपाविर्भाव-पूर्वकं
 देश-कालावसर-सङ्कोच-रहिततया यावद् आत्म-भावितया पारमार्थिक-भगवच्-
 चरणारविन्द-युगलैकान्तिकात्यन्तिक-परभक्ति--पर-ज्ञान--परम-भक्ति-कृत-
 परिपूर्णनवरत-नित्य-विशदतमानन्य- प्रयोजनानवधिकातिशय-भगवद्-अनुभव-
 जनितानवधि कातिशय-प्रीति-कारिता-शेषावस्थोचिताशेष-शेषतैक-रति-रूप-नित्य-
 कैङ्कर्यं भगवान् श्रीमन्-नारायण एव प्राप्य मां रक्षतु

इत्थं अनुसन्धाय

०४ ध्यानादि ③

स्वात्म-शारीरक-परमात्मानं ध्यायन् आसीत् ।

अयम् एव ज्यायान् पक्षः ।

एवं जपन् ध्यानान्वितेन योगेन सर्वम् अभ्यस्तं मन्त्र-जातं यावत् भगवान् नारायणः
 पूर्वोक्ते तत्-तत्-स्थाने सम्यग् आभाति
 तावद् अधीत्य
 आत्मना आत्मानं समाधाय
 जप-क्रियाम् उक्त्वा
 ध्यातृ-ध्येयाविभागेन तन्मयतां यावद् आपद्यते तावद् भावयित्वा
 ध्यानासने त्यक्त्वा
 रात्रि-क्षयावधि शयने समासीत् ।

०५ कार्यता ③

ततश् च

ईदृशः परमात्मा ऽयं प्रत्यग् आत्मा ऽयम् ईदृशः ।
 तत्-संबन्धानुसन्धानं इति योगः प्रकीर्तितः ॥
 योगो नामेन्द्रियैर् वश्यैः बुद्धिर् ब्रह्मणि संस्थितिः ।
 प्रयुक्तैर् अ-प्रयुक्तैर् वा भगवत्-कर्म-विस्तरे ॥

[[162]]

इति शाण्डिल्य-स्मृत्यु-उक्त एव योगो नित्यम् अनुष्ठेयः ।
न तु साक्षात् भगवत्-प्राप्ति-साधनत्वेन विहितः
भक्ति-शब्द-वाच्यो योगो नित्यम् अनुष्ठेय इति सर्वं समञ्जसम् ।

०३ योग-समापन-सात्त्विक-त्यागः ②

ओं कृतं च करिष्यामि भगवन्-नित्येन भगवत्-प्रीत्यु-अर्थेन महा-विभूति-चातुर्-आत्म्य-भगवद्-
वासुदेव-पादारविन्दार्चनेन योगेन भगवत्-कर्मणा भगवान् प्रीयतां वासुदेव

इति योगं भगवते समर्पयेत् ।

०४ स्वापादि-प्रकारः ②

ततः पादौ प्रक्षाल्य सम्मृज्य द्विर् आचम्य शुचिः शुष्यत्-पादास्य-पाणिः सुवस्त्र-धरः माधवं स्मरन्
शयने संविश्य निद्रां कुर्यात् । स्व-गृहे प्राक्-छिराः श्वशुर-गृहे दक्षिण-शिराः पथि प्रत्यक्-छिराश्
शयीत । कदाचिद् अप्यु उदक्-छिरा न शयीत । शून्यालये श्मशाने पथ्य एक-वृक्षे महा-देव-गृहे
मातृ-वेश्मनि यक्ष-नागायतने चैत्य-द्रुमे स्कन्दायतने गुल्म-च्छायासु शर्करा-लोष्ट-पांसुषु भिन्न-
शयने ऽशुचि-प्रदेशे धान्य-गो-देव-विप्राणां गुरूणां चोपरि आकाशे दीक्षां विना दर्भासने च न
स्वपेत् ।

नग्नो ऽशुचिर् आर्द्र-वासा उत्तरा-पर-मस्तकश् च न स्वपेत् । विहित-कालेषु स्त्री-सम्भोगं यथावत्
कुर्यात् । तदा यज्ञोपवीतं निवीतं पृष्ठ-भागे कृत्वा स्त्री-सम्भोग-काल-धार्यं वासो धृत्वा स्त्री-
सम्भोगं कुर्यात् । स्त्रीणां षोडश-रात्रयो ऋतु-कालो भवति । तस्मिन् ऋतु-काले चतस्रो रात्रिर्
वर्जयित्वा युग्मासु संविशेत् । यद् युग्मासु संविशेत् स्त्री-जननं भवेत् । पुंसः शुक्लाधिक्ये पुमान्
। स्त्रियः शुक्लाधिक्ये स्त्री । समे पुमान् पुं-स्त्रियौ नपुंसको वा भवेत् । अतः स्वयं स्निग्धं भोजनं
कुर्यात् । स्त्री लघ्व् आहारं कुर्यात् । ऋतु-स्नातां भर्या नातिवर्तेत ।

[[163]]

यावद् व्यवायं स्त्रिया सह शयीत । ततो न शयीत । सुवस्त्र-वेष-धरया स्नातया शुद्ध-चितया
ऽरोगया भार्यया सह स्वयं चैवं विधः सम्भोगं कुर्यात् । षष्ठ्यु-अमा-पूर्णिमा-चतुर्दश्यु-अष्टमी-
व्यतीपात-सङ्क्रान्त्यु-उपवास-दिनादिषु प्रतिषिद्ध-दिनेषु स्त्री-सम्भोगं वर्जयेत् ।

ऋतौ गर्भ-शङ्कायास् सम्भवात् ऋतु-कालाभिगामी स्नानं कुर्यात् । अनृतौ मूत्र-पुरीष-शौच-
सह-पठित-शौच-मात्रं कृत्वा ऽऽचामेत् । ततो यावन् निद्रा समभ्येति तावन् मनसा नारायणम्
अनुस्मरेत् । निद्रान्तरे ऽपि प्रबुद्धस् सन् भगवद्-गुणानुवर्णनं कुर्यात् । एवं यथाधिकारं यथा-विधि
नित्यानि सर्वाणि आश्रम-कर्माणि सर्वैर् आश्रमिभिर् यावज्-जीवम् अनुष्ठेयानि ।

इति श्रीमद्-रामानुज-सिद्धान्त-स्थापनाचार्य--शत-क्रतु--चतुर्-वेदि-श्रीनिवासाचार्य-विरचिते
पञ्च-काल-क्रिया-दीपे योग-निरूपणाख्यः पञ्चमः परिच्छेदः

अनेक-स्मृति-विज्ञेय कृत्याकृत्य-प्रकाशकम् ।
पञ्च-काल-क्रिया-दीपम् अ-ज्ञान--ध्वान्त-रोधकम् ॥
शत-क्रतु--चतुर्-वेदि--श्रीनिवासाचार्य-निर्मितम् ।
सन्तस् समीक्ष्य सन्तोषं प्राप्नुवन्तु विमत्सराः ॥

॥ इति पञ्च-काल-क्रिया-दीपः सम्पूर्णः ॥

०६ कर्म-विचारः①

०१ फल-कर्तृत्व-त्यागः②

...

नित्य-नैमित्तिक-काम्य-कर्मणां फल-सङ्ग-कर्तृत्व-त्याग-पूर्वकं भगवद्-आराधन-रूपत्वेन अनुष्ठेयता॥

यज्ञ-दान-तपः-कर्म न त्याज्यं कार्यम् एव तत् ।
यज्ञो दानं तपश् चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥
एतान्य अपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतम् उत्तमम् ॥
नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहार्तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः ॥
दुःखम् इत्य् एव यत् कर्म काय-क्लेश-क्षयात् त्यजेत् ।
कार्यम् इत्य् एव यत् कर्म नियतं क्रियते ऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागस् सात्त्विको मतः ॥

इति त्यागस्य त्रैविध्यम् उक्तम् । कर्म-जन्यं स्वर्गादि-फलं मम न स्याद् इति फल-त्यागः । फल-साधनतया मदीयम् इदं कर्मेति कर्मणि मदीयतायाः परित्यागः कर्म-विषयस् त्यागः स एव सङ्ग-त्यागः । सर्वेश्वरे कर्तृत्वानुसन्धानेन आत्मनः कर्तृता-त्यागः कर्तृ-विषयस् त्यागः । एवं फल-सङ्ग-कर्तृत्व-त्याग-पूर्वकं नित्य-नैमित्तिकं वर्णाश्रम-विहितं कर्म ब्रह्माराधन-रूपतया कार्यं स्वयं प्रयोजनम् इति मत्वा सङ्गं कर्मणि ममतां फलं च त्यक्त्वा यत् क्रियते तस्यैव सात्त्विक-त्यागत्वाद् एवम् एव कार्यम् इति अष्टादशाध्याये पूर्व-षट्क--मध्यम-षट्कोत्तम-षट्केषु च सर्वत्र गीता-भाष्ये रामानुजाचार्यैस् सिद्धान्तिरुक्तम् । काम्य-कर्मणाम् अपि भगवद्-आराधनत्वेनानुष्ठितानां मोक्ष एव फलम् इति

[[35]]

सर्व-कर्माण्य् अपि सदा कुर्वाणो मद-व्यपाश्रयः ।
मत्-प्रसादाद् अवाप्नोति शाश्वतं पदम् अव्ययम् ॥

इति श्लोक-भाष्ये ऽप्य् उक्तम् । "सर्व-धर्मान् परित्यज्ये"ति चरम-श्लोक-भाष्ये ऽपि परित्यज्येति पदेन फल-कर्म-सङ्ग-कर्तृत्व-त्याग एवोक्तः इत्य् उच्यते न कर्म-स्व-रूप-त्यागः उक्त इति । उक्त-त्याग-पूर्वकं यथाधिकारं कर्म-योग--ज्ञान-योग--भक्ति-योगान् कुर्वाण एव माम् एकम् एव कर्तारम् आराध्यं प्राप्यम् उपायं च ब्रज अनुसन्धत्स्वेति । एष एव धर्माणां शास्त्रीयः परित्यागः इत्य् उक्त्वा, एवं वर्तमानं त्वां मत्-प्राप्ति-विरोध्य-अन्-आदि-काल-सञ्चित-प्रारब्ध-रूप-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच इति । अथवा भक्ति-योगारम्भ-विरोध्य-अन्-आदि-

काल-सञ्चित-नाना विधान् अन्-अन्त-पापानुगुण-प्रायश्चित्त-रूप-कृच्छ्र-चान्द्रायण-कूश्माण्ड-
वैश्वानरीं वातवतीं पवित्रेष्टि-त्रिवृद्-अग्निष्टुद्-अग्निष्टोमादिकान् सर्व-धर्मान् परित्यज्य भक्ति-
योगारम्भ-सिद्धयै माम् एकम् अन्-आलोचित-विशेषाशेष-लोक-शरण्यं शरणं प्रपद्यस्व। भक्त्यु-
आरम्भ-विरोधि-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच इति द्वेधा व्याख्यातत्वात् । पूर्व-व्याख्यानेन
नित्य-नैमित्तिक-कर्मणां कर्तव्यत्वं, उत्तर-व्याख्यानेन प्रतिपदोक्त-प्रायश्चित्त-करणासमर्थस्य
भगवच्-छरण-वृजनम् उक्तम् । तस्माद् भगवद्-ध्यान-पूर्वकं भगवद्-आराधनत्वेन नित्य-
नैमित्तिक-काम्य-कर्मणां श्रौतानां स्मार्तानां सात्वत-शास्त्रोक्त-मार्गेण कर्तव्यत्वं सिद्धम् ।
सात्वत-शास्त्र-विधिश् च भारते तत्र तत्र किञ्चित् सूचितः । मनु-स्मृतौ

अभ्यर्चन् पितृन् देवान् पठन् जुह्वन् बलिं ददन् ।
ज्वलन् अग्निं स्मरेद् यो मां स याति परमां गतिम् ॥

[[36]]

मन्त्रैर् एव मन्त्रार्था स्मर्तव्या इति न्यायात् स्मरेद् इति विधानात् मन्त्रेण विना स्मरणासम्भवात्
अनुस्मृत्य ध्यानारम्भावसानयोः द्वादशाष्टाक्षरयोर् उपात्तत्वाद् उपक्रमोप-संहाराधिकरण-न्यायेन
तन्-मन्त्रेण भगवन्तं स्मृत्वा ऽभ्यर्चनादिकं कुर्यात् । पठन् - वेदाध्ययनं कुर्वन् जुह्वन् - अग्नि-
होत्रादिकम् उज्ज्वलन् ज्वलयन् सायं प्रातर उद्धराहवनीयम् इति ज्वलन्तम् उद्धरेद् इति वचनाद्
अग्न्यु-उद्धोधने अन्वाधानादिषु च काष्ठैर् मन्त्रेण प्रज्वलने च मन्त्र-जप-पूर्वकं नारायणस् स्मर्तव्यः
। विष्णु-पुराणे --

वासुदेवे मनो यस्य जप-होमार्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥

इत्थं उक्तत्वात् मनसो निश्चलत्वात् मन्त्रोच्चारणे मन्त्रार्थस्य कृत्स्नस्य झटित्युपस्थितत्वात् तद्-
ध्यानं सम्यक् सङ्गच्छसे । जपाभावे तु यत्नात् स्मृतिर् इति मन्त्र-जप एव ज्यायान् । ननु वैदिक-
मन्त्रोच्चारण-काले मन्त्रान्तर-जपस्य निषिद्धत्वाद् दुष्करत्वाच्च कथं तज्-जप इति चेत् उच्यते
।

प्रत्यग्-आशिषो मन्त्रान् जपत्यु अकरणानुपतिष्ठते ऽनुमन्त्रयते

इति सूत्राद् अकरण-मन्त्रोपस्थानानुमन्त्रणस्य विहितत्वात् याग-जन्य-फल-भोक्तृत्वाद्
यजमानस्य उद्गीथोपासने साम्नो ऽधिकस्यापि प्रणवस्योपासन-विधि-बलात् यथोद्गानं तद्वद्
अत्रापि प्रपन्नानां सात्वत-शास्त्र-विधि-बलात् भारतादि-विधि-बलाच्च यजमानेन मूल-मन्त्र-
जप-पूर्व-विष्णु-स्मृति-पूर्वकं याजमान-मन्त्रोद्देश-त्यागादीनां वचनेन न को ऽपि विरोधः ।
अध्वर्योर् अपि "अग्न्यु-आदिकं यज" इत्थं उक्त्वा मूल-मन्त्रं जपतो वषट्-कार-काले हविः
प्रक्षेपस्य सुकरत्वात् तेनापि जपितव्यम् । अनुगीतायां अध्वर्यु-यति-संवादे

भगवन् भगवद्-बुद्ध्या प्रतिबुद्धो ब्रवीम्य अहम् ।
व्रतं मम क्रतुं कर्तुं नापराधो ऽस्ति मे द्वि-ज

इत् उक्त्या तस्यपि भगवद्-ध्यानम् आवश्यकम् । उद्गातुर् उद्गीयोपासनवन् मन्त्र-जप-पूर्वकं चेद् ध्यानं सुकरम् इत् उक्तम् ।

[[37]]

होतुर् अपि पुरोनुवाक्योक्त्य् अन्-अन्तरं "ये यजामहात् पूर्वं मन्त्र-जपस् सुकरः । ब्रह्मणो निर्व्यापरत्वात् सर्वदा सुकरः । एवं वैदिक-मन्त्र-प्रयोगाविरोधेन मूल-मन्त्र-जपस्य कर्तुं शक्यत्वाद् अविरोधाच् च । वैखानस-सूत्रे चाधाने

प्राणायाम-शतं कुर्याद् ध्यायन् नारायणम्

इति । अग्नि-होत्रे च

समिधम् आधाय प्राणायामं कुर्यात् ।

ध्यायन् नारायणम् इति हुत्वा भूमानं विष्णुं ध्यायेद् इति । दर्श-पूर्ण-मासादिषु आदि-मध्यावसानेषु वषट्-कारे च विष्णुं ध्यायेद् इति । प्रायश्चित्त-प्रश्ने च अन्-अज्ञाते विशेषे ध्यानं नारायणस्य तज्-जपेज्या-होमश् च भिन्नात्मनीति तत्र तत्र बहुधा नारायण-ध्यानस्योक्तत्वात् । मन्त्र-आदि-धर्म-शास्त्राणां प्रतिष्ठा-विधायक-वैखानस-शास्त्रस्य च पञ्च-रात्र--मूलत्वात् आश्वमेधिक-वैष्णव-धर्म-शास्त्रस्य च प्रत्यक्ष-पठ्यमान--पञ्च-रात्र--मूलत्वेन दृष्टत्वात् । पञ्च-रात्रे द्वादशाष्टाक्षरयोर् नितरां प्रशस्तत्वात् तथैव मोक्ष-धर्मे वैष्णव-धर्म-शास्त्रे च भगवता वेद-व्यासेन तयोर् अत्यन्त-स्तुति-पूर्वकं सर्वथा जप-विधानाच् च । ततश् च ताप-पुण्ड्र-नाम-मन्त्र-याग-संस्तुतैर् अ-च्छिद्र--पञ्च-काल--परायणैर् द्वादशाष्टाक्षर-तत्त्व-ज्ञैश् चतुर्व्यूह-विभाग-ज्ञैश् चक्राब्ज-मण्डल-दीक्षितैर् अर्ध-पञ्चक-तत्त्व-ज्ञैः परम-भागवतैर् एकान्तिभिः स्वयं प्रयोजनतया भगवद्-आराधनत्वेन फल-कर्म-सङ्ग-कर्तृत्व-त्याग-पूर्वकं नित्य-नैमित्तिक--काम्य-कर्म--जालं सर्वदा द्वादशाष्टाक्षर-जप-युक्त-विष्णु-ध्यान-पूर्वकं कर्तव्यम् इति निश्चयः । तद्-उक्तं पाञ्च-रात्रे पाद्म-संहितायां सिद्धान्ति-नियमाध्याये औपगायन-प्रभृत्य्-अष्ट-सहस्र-मुनिं प्रति ब्रह्म-वचनम् --

पञ्च-रात्रोक्त-मार्गेषु मन्त्र-सिद्धान्त-वर्त्मना ।

हीक्षयित्वा यथा-न्यायं चक्र-वारि-ज-मण्डले ॥

[[38]]

आहतान् दीक्षितान् ब्रह्म कर्तव्यम् इदम् आदिशत् ।
काण्वां माध्यन्दिनां शाखां शाखास्व् अभ्यर्हिते उभे ॥
अधीध्वं मूल-शाखे ते निषेकादींश् च संस्कृतिः ।
ताभ्याम् एवानुतिष्ठध्वं सोम-यागदि-कर्म च ॥
भगवन्-मन्त्र-सहितं तत्-समाराधनात्मकम् ।
कर्तव्यत्वेन वेदोक्तम् इत् एवं फल-वर्जितम् ॥
कृणीध्वम् इति कुर्वाणैः कर्म-निश्च्रेयसं फलम् ।

प्राप्यते तेन युष्माभिः मन्त्र-सिद्धान्त-वर्त्मना ॥
 पञ्च-कालं यथा-शास्त्रं गृहे वा मन्दिरे ऽपि वा ।
 भगवत्-पूजनं कार्यं अद्य प्रभृति नान्यथा ॥
 यूयं भागवतास् तेन गता भगवद्-अर्चनम् ।
 भगवद्-भक्तिर् इति वा करणीयं चतुर्-मुख ॥
 नाम्ना भागवतास् सन्तो दीक्षयित्वा यथा-विधि ।
 यथोक्तं कर्म कुर्वाणाः प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥
 शाखान्तरेषु मन्त्राणां पावनाः परमर्षयः ।
 तान् अप्य् अधीत्य तैर् मन्त्रैः अर्चयध्वम् अधोक्ष-जम् ॥

[[39]]

परमर्षय मुख्य-मन्त्राः । तस्याम् एवाष्टाक्षर-कल्पाध्याये अष्टाक्षर-जप-पूर्वकं दर्शे माघ-मासे च
 श्राद्धं विस्तरेणोक्त्वा कृच्छ्र-चान्द्रायणैकादश्य्-उपवासादिषु अष्टाक्षरेणाराधनम् उक्त्वा अग्नि-
 होत्रादि-समान्तं यज्ञादिष्व् अपि मूल-मन्त्रेणाराधनं विहितम् ।

अग्नि-होत्रादिकान् यज्ञान् जपन् अष्टाक्षरं सुधीः ।
 कुर्वन् तत्-तत्-च्छत-गुणं फलम् आप्नोति मन्त्र-वित् ॥

तीर्थाभिगमन-पवित्राद्य्-उत्सवेषु मन्त्र-जपात् फलानन्त्यम् उक्त्वा पुनश् चविहितम् ।

यस्य यस्य च धर्मस्य फलं यद् ईरितम् ।
 तस्य तस्य फलं तत् तत्, मन्त्राच् छत-गुणं लभेत् ॥

इति । तद् उक्तं हारीत-स्मृतौ

व्यापकानां च सर्वेषां ज्यायान् अष्टाक्षरो मनुः । अष्टाक्षरस्य जप्ता तु साक्षान्
 नारायणः स्वयम् ॥
 सन्यासं च समुद्रां च सर्षिच्छन्दो-ऽधि-दैवतम् ।
 स-दीक्षा-विधि--स-ध्यानं सार्थं मन्त्र-युतं हृतम् ॥
 स्नात्वा शुद्धः प्रसन्नात्मा कृत-कृत्यो जनार्दनम् ।
 मनसाप्य् अर्चयित्वा वा जपेन् मन्त्रं सदा बुधः ॥
 दान-प्रतिग्रहौ यागं स्वाध्यायं पितृ-तर्पणम् ॥
 पितुः क्रिया ऽष्टाक्षरस्य जप्ता कुर्याद् अतन्द्रितः ॥

इति ॥

[[40]]

उक्तं च श्री-पाञ्चरात्र-रक्षायाम् आचार्यैः

निज-कर्मादि-भक्त्यु-अन्तं कुर्यात् प्रीत्यैव कारितम् ।
उपायतां परित्यज्य न्यसेद् देवे कृता महीः ॥

इति । इदं तावत् आप्रबोधाद् आनिशान्तम् अनुष्ठीयमानेषु सर्वेषु कर्मसु न विस्मर्तव्यम् ।
समयाचार-नियमाध्याये वैष्णव-धर्म-शास्त्रादिषु कथितं परमैकान्तिनां विशेष-कर्तव्यं च सर्वं
यथावद् अवगन्तव्यम् । सर्वेषु कर्मरम्भेषु भगवच्-छास्त्राद्य-उक्तः तत्-तन्-मन्त्रो भगवान् एवेत्य्
आदिकं भाष्य-कार-नित्योक्त-वाक्यं च पठितव्यम् । अन्ते च सर्वं स्व-नियाम्येत्य् आदि-क्रमेण
स-मन्त्रकं भगवति समर्पणीयम् इत्य् एतत् सर्वं हृदि निधाय आनुशासनिक-पर्वणि यज्ञ-पुरुष-
माहात्म्ये कर्मणि कर्मण्य् अवान्तर-कर्मसु अपि आज्य-पुरोडाश-सोम-यूपादिषु च कृष्ण-बुद्ध्या
कर्तव्यत्वम् उक्तम् ।

यूपं विष्णुं वासुदेवं विजानन्,
सर्वान् विप्रान् बोधते तत्त्व-दर्शीम् ।
विष्णुं क्रान्तं वासुदेवं विजानन्,
ब्राह्मणो ब्रह्मण एति स्थानम् ॥
सर्वं वैष्णवं यज्ञ-मार्गं
चातुर्-होत्रं वैष्णवं तत्र कृष्णः ।
सर्वैर् भावैर् इज्यते सर्व-कामैः
पुण्यान् लोकान् ब्राह्मणाः प्राप्नुवन्ति ॥

[[41]]

पुण्य-लोकः -- भगवल्-लोकः । पूजायां बहु-वचनम् । यद् वा केशवादि-व्यूह-लोका अन्-अन्ताः
।

सोमं सद्-भावाद्ये च जातं पिबन्ति
दीप्तं कर्म ये विदानाश् चरन्ति ।
एकान्तम् इष्टौ चिन्तयन्तो दिवि-स्थास्
ते वै पन्थानं प्राप्नुवन्ति व्रत-ज्ञाः ॥

सद्-भावात् - ब्रह्म-बुद्ध्या "ओं तत् सद्" इति ब्रह्मणस् त्रि-विधः स्मृत इत्य्-उक्तेः

आज्यं यज्ञं सुक्-सुवौ यज्ञ-दाता इच्छा-पत्नी पत्नी-शाला हवींषि इध्मा-पुरोडाशं
सर्वदा होतृ-कर्ता कृत्स्नं विष्णुं संविजानँस्तमेति ।

पत्नी-शाला -- प्राग्-वंशः ।

योगे योगे कर्मणां चाभिहारे
युक्ते वैताने कर्मणि ब्राह्मणो ऽस्य ।

पुष्ट्य्-अर्थेषु प्राप्नुयात् सर्व-सिद्धिं
शान्त्य्-अर्थेषु प्राप्नुयात् सर्व-शान्तिम् ॥

कर्मणां योगः प्रारम्भः । अभिहारः -- समाप्तिः । अस्य विष्णोस् सम्बन्धिनि वैताने कर्मणि इत्य्
अन्वयः । पुष्ट्य्-अर्था जयादयः । उपहोमाः शान्त्य्-अर्थाः । प्रायश्चित्तानि एकाक्षर-द्व्य्-अक्षरम्
एकम् एव यदा यजन्ते नियताः प्रतीताः दृष्ट्वा मनसि अर्चयित्वा स्म[[??]] विप्राः सतां मार्गं तद-
ध्रुवं सम्भजन्ते । एकाक्षरं प्रणवः "ओम्" इत्य् एकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् माम् अनुस्मरेद् इत्य् उक्तेः
। द्व्य्-अक्षरं वषट्-कारः । "द्व्य्-अक्षरो वषट्-कार" इति श्रुतेः । "विश्वं विष्णुर् वषट्-कारः"
"प्राण-दः प्रणवः पण" इति वषट्-कार-प्रणव-रूपत्वं विष्णोर् विज्ञायते । अत्र प्रणव-वषट्-
कारयोः मध्य-गानि "आश्रावय" "अस्तु श्रौषड्" "यज" "ये यजामह" इति चतुर्-दशाक्षराण्य्
अपि गृह्यन्ते । प्रत्याहार-ग्रहणवत् ।

[[42]]

एको वेदो ब्राह्मणानां बभूव
चतुष्-पादस् त्रै-गुणो ब्रह्म-शीर्षः ।
पादं पादं ब्राह्मणा वेदम् आहुः
त्रेता-काले तं च तं विद्धि शीर्षम् ॥

चतुष्पादः -- ऋग्-यजुस्-सामाथर्व-रूप-चतुष्टय पादवान् । त्रै-गुणः सत्व-रजस्-तमो गुणात्मक-
फलवत् । ब्रह्माराधन-रूप-प्रजा-पुत्राद्य्-अन्नादि-लिप्सा-रूप--आभिचारादि-रूप--त्रि-विध-कर्म-
बोधको ब्रह्म-शीर्षः -- ब्रह्म-काण्ड-शीर्षः । त्रेता-काले यज्ञ-काले अध्वर्युद्गातृ-होतृ-कार्य-वशात्
यजुस्-साम-ऋग्-वेद-व्यवहारः प्राप्तः । [तं] ब्रह्म-काण्ड-रूप-शीर्षं तं विद्धि - कृष्णं जानीहीत्य्
अर्थः ।

फल-भोगावश्यम्भाव-दोष-परिहारः ③

...

न च

एवम् अपि कर्मणां फल-भोगावश्यं भाव-दोषो न परिहृत

इति वाच्यम् - तत्-तत्-फलेच्छाम् अन्तरेण भगवद्-आराधन-बुद्ध्यैवानुष्ठितानां तेषां तत्-तत्-
फल-जननासमर्थत्वात् ।

न

"चेक्षु-क्षीरादि-गतं माधुर्यं मम जिह्वायां न स्याद्" इति बुद्ध्या इक्षु-क्षीरादिके पीते
ऽपि
तद्-गत-माधुर्यस्यानुभूयमानत्वात्

तद्वत् पुण्यानां कर्मणां भगवद्-आराधनत्वेन करणे ऽपि
कथं तत्-फल-भोगाभाव

इति वाच्यम् ।

प्रबल-जिह्वा-दोष-वशात् पीतेक्षु-क्षीरादि-माधुर्यं यथा न ज्ञायते
यथा वा बद्ध-कोष्ठस्य हरीतकी-शत-भक्षणे ऽपि विवेकाभावः यथा मणि-मन्त्रौषधिवशात् अग्नि-
सर्पादि-गत-दाहादि-सह-ज-शक्तिः प्रतिहन्यते तद्वत् पुण्यानां कर्मणां भगवद्-आराधन-रूपाणां
आरम्भावसानयोः "कृतं च करिष्यामी"त्याद्य उक्त्या भगवद्-अर्पितानां भगवतो निरतिशय-
प्रीति-प्रतिहतानां फल-जनन-शक्त्यभावात्[[?]] स्वर्गादि-फल-साधन-भूते कर्मणि तत्-
कामस्यैवाधिकारेण फलेच्छा-रहितैर् मुमुक्षुभिर् भगवत्-प्रीत्य्-अर्थं अनुष्ठितानां कर्मणां अन्-
अधिकारि-कृत-तया फलान् उत्पादकत्वाच्च भगवद्-आराधनत्वेनानुष्ठितैः कर्मभिः फल-
भोगाभावस्य उपनिषद्-भारत--पाञ्च-रात्र--मन्वादि-स्मृतिषूक्तत्वाच्च । अतो न फल-
भोगावश्यं भाव-दोषः । उक्तं हि शान्ति-पर्वणि राज-धर्मे दुर्गातितरणाध्याये

[[32]]

य एनं संश्रयन्तीह भक्त्या नारायणं हरिम् ।
ते तरन्तीह दुर्गाणि न मे ऽत्रास्ति विचारणा ॥
अस्मिन् अर्पित-कर्मणः सर्व-भावेन भारत ।
कृष्णे कमल-पत्राभे दुर्गाण् अतितरन्ति ते ॥

इति दुर्ग - संसार-दुर्गम्, संसारं च पुण्य-पाप-कर्म-फलानुबन्धः । तस्य अतितरणं भगवत्-प्रीति-
कारितम् इति सिद्धम् । "यत् करोषि यद् अश्नासी"त्याद्य अपि स्मर्तव्यम् ।

०२ श्रौत-कर्मणां महाराधन-रूपत्वम्②

सर्वे देवा वासुदेवं यजन्ते
ततो बुद्ध्या मार्गमाणास् तनूनाम् ।
सर्वान् कामान् प्राप्नुवन् ते विशालान्
त्रै-लोक्ये ऽस्मिन् कृष्ण-नामाभिधानात् ॥

तनूनां अग्नीन्द्रादि-तनूनां । सप्तम्य् अर्थे षष्ठी । तनुषु कृष्ण-नामाभिधानात् । "यो देवानां
नामधा" इति श्रुत्या सर्वेषां नाम-रूप-व्याकृतत्वात्वाच्च ।

[[43]]

"नाम नामैव नाम मे" "नाम वै प्रजा-पतिर्" इति श्रुत्या चाग्नीन्द्रादि-नाम्नां कृष्ण-
नामत्वेनाभिधानात् । एवं बुद्ध्या मार्गमाणा वासुदेवं यजन्त इत्य् अर्थः । "विष्णुः सर्वा देवता"
इत्य् ऐतरेयक-श्रुतेः

ज्योतींषि शुक्लानि च यानि लोके
 त्रयो लोका लोक-पालास् त्रयी च ।
 त्रयो ऽग्नयश् चाहुतयश् च पञ्च
 सर्वे देवा देवकी पुत्र एव ॥
 सर्वे वेदास् सर्व-वेद्यास् स-शास्त्राः
 सर्वे यज्ञास् सर्व-यज्ञश् च कृष्णः ।
 विदुः कृष्णं ब्राह्मणास् तत्त्वतो ये
 तेषां राजन् सर्व-यज्ञास् समाप्ताः ॥
 ज्ञेयो योगी ब्राह्मणैर् वेद-तत्त्वैर् आरण्यकैस् सैष कृष्णः प्रभुत्वात् ।
 सर्वान् यज्ञान् ब्राह्मणान् ब्रह्म चैव
 व्याप्यातिष्ठेद् देव-देवस् त्रि-लोके ॥

स एष देवश् शक्रम् ईशं यजमानं प्रीत्या प्राहुः

क्रतु-यष्टारम् अग्र्यं यजमानं यजमानं शक्रम् आहुः

शक्रम् इन्द्रम् आहुः "एष वा एतर् हीन्द्रो यो यजते" इति श्रुतेः ।

[[44]]

नमश् चक्रे वेद वेदार्थकत्वात्
 भक्तो भक्त्या शुद्ध-भावः प्रधानः ।
 श्रद्धा-त्यागं निर्वृतिं चापि पूजां सत्यं धर्मं य कृतं चाभ्युपेति ॥
 काम-क्रोधौ त्यज्य सर्वेषु तुल्यः श्रद्धा-पूतस् सर्व-यज्ञेषु योग्यः ॥

इति कृष्ण-ध्यान-पूर्वकं विष्णु-रूप-सोमाज्यादि-द्रव्यैः कृष्ण-यजनं परमैकान्तिनां सुस्पष्टं
 विहितम् । भगवद्-आराधन-रूपेभ्यः स्मार्त-पौराणिकागम-शास्त्र-दान--काण्ड-व्रत--काण्ड-
 कृच्छ्र--चान्द्रायणादि-विधायक-शास्त्र-विहित-कर्मभ्यः श्रौत-कर्मणां भगवतो नित्य-निरवधिक-
 निरतिशय-प्रीति-करत्वात् तेषां महाराधन-रूपत्वम् । अत एव

महा-क्रतुर् महा-यज्वा महा-यज्ञो महा-हविर्

इति भगवतो नामान्य उक्तानि । ताप-पुण्ड्रादि-कृत-लक्षणैर् एकान्तिभिर् भगवन् -मन्त्र-सहित-
 तद्-आराधनत्वेन कृतस्य अग्नि-होत्रादि-क्रतुर् महा-क्रतुत्वम् । तथाविध-यष्टुर् एकान्तिनो महा-
 यज्वत्वम् । तथाविध-सोम-यागस्य महा-यज्ञत्वम् । तत्रत्य-पुरोडाश-पशु-सोमाज्यादीनां महा-
 हविष्ट्वम् । एकान्तिभिर् इज्यस्य विष्णोर् महेज्यत्वम् । अन्यैस् तु इज्यत्वम् । "यज्ञ इज्यो
 महेज्यश् चे"ति पृथग् उपादानात् । तद्-रूपत्वात् तद्-आत्मत्वात् कृष्णस्यापि महा-क्रत्व-
 आदीनां वाच्यत्वम् । "ज्ञानी त्व् आत्मैव मे मतम्" इत्य् उक्तेः "यज्ञो यज्ञ-पतिर् यज्वेत्" आदिः
 आर्तार्थार्थि-जिज्ञासु-विषयः । ब्रह्म-रुद्रेन्द्रादिभ्यः फलेच्छु-विषय इति केचित् । महा-क्रत्व-आदिस्
 तु प्रतिबुद्ध-विषय एवेति विवेकः । अत एव

[[45]]

येषु अन्य-देवता-भक्ताः यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
ते ऽपि माम् एव कौन्तेय यजन्त्य् अविधि-पूर्वकम्॥

इति फलार्थिभिर् ब्रह्म-रुद्रेन्द्राद्य्-आराधकैर् अनुष्ठितस्य यज्ञस्याविधि-पूर्वकत्वम् ।

चतुर् होतारो यत्र सम्पदं गच्छन्ति देवैः

"सर्वे वेदा यत् पदम् आमनन्ति" "सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति" "सर्वे हातारो यत्रैकं भवन्ति ।
समानसीन आत्माजनानाम्" इत्य् आदि-वचनात् प्रतर्दन-विद्या-न्यायेन प्रकार-वाचक-शब्दानां
प्रकारि-पर्यन्तत्व-नियमाच्च च विधीनां परमात्म-पर्यन्ततया तद्-बुद्धिं विना अनुष्ठितत्वाद् उक्तम् ।
विशिष्टान्तर गत-विशेषण-मात्र-पर्यवसन्न-बुद्धितया तेषां स्वर्गाद्य्-अल्पास्थिर-फल-भोगवत्त्वं च ।
"यान्ति मद्-याजिनो ऽपि माम्" इति स्व-पर्यन्त-बुद्धिभिर् एकान्तिभिर् अनुष्ठित-यज्ञस्य तु स्व-
प्रापकत्वात् स्व-पदं प्राप्तानां नित्य-निरवद्य-निरतिशय-पुनर् आवृत्ति-रहित-फल-भोगवत्त्वं चेति
भगवता भाष्य-कारेण उक्तम् । "विष्णुर् यज्ञो" " यज्ञो वै विष्णुर्" इत्य् आदि-श्रुतिभिः यज्ञ-स्व-
रूपत्वावगमात् ।

सत्य मिथ्या वृषेदसि ऋतस्य योगे विश्वस्य मूर्ध्ना "सत्यस्य सत्यं अनुयत्र युज्यते ।
ऋजु-कर्म सत्यं सुचरितम् । सत्य एवैनास् सुकृतस्य लोके सादयति । स सत्ये
प्रतिष्ठति । वाग् वै यज्ञो वाच्येव तद्-यज्ञम् अन्ततः प्रतिष्ठापयति"

इत्य् आदिना सत्य-स्व-रूपत्वात् । यज्ञानां वेदात्मकत्वेन ज्ञान-स्व-रूपत्वात् । ज्योतिष्टोम-
द्वादशाहयोः स्तोमतः स्व-रूपतश् च छन्दोग-कल्प-सूत्र-कृता भगवता गार्ग्य-प्रशकाचार्येण
आनन्त्यस्योक्तत्वात् । "सत्यं ज्ञानम् अन्-अन्तं ब्रह्मे"ति ब्रह्म-लक्षण-सद्-भावात् यज्ञस्य
विष्णोस् सच्-चिद्-आनन्द-ब्रह्म-स्व-रूपत्वम् ।

तस्माद् यज्ञात् सर्व-हुतः ऋचस् सामानि जज्ञिरे

इत्य् आरभ्य "तथा लोकां अकल्पयन्" इत्य् अन्तेन ऋग्-यजुस्-साम-छन्दसां चेतनाचेतन-रूप-
जगतश् च यज्ञ-पुरुषात् सृष्टेः श्रुतत्वात्

[[46]]

सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः नामानि कृत्वा ऽभिवदन् यदास्ते

इति नाम-रूप-व्याकृतत्वोक्तेः । "उतामृतत्वस्येशान" इति मोक्ष-प्रदत्वोक्तेः ।

पादो ऽस्य विश्वा भूतानि । त्रि-पादस्यामृतं दिवि ।

इति लीला-विभूति--नित्य-विभूतीश्वरत्वोक्तेः ।

हीश् च [श्रीश् च] ते लक्ष्मीश् च पत्न्यौ इति तैत्तरीय-काण्व-शाखोक्त-रीत्या श्री-
लक्ष्मी-रूप-वाग्-दक्षिणापतित्वौक्तेः।

"ऋचस्सामानि यजूंषि । सा हि श्रीर् अमृता सताम्" "श्रीर् वै वाचो ऽग्रम्" इत्य् आदिभिः श्रियो
वाग्-रूपत्वम्।

साहस्री वा एषा लक्ष्मी यद्-उन्नतो लक्ष्म्य एव पशून् अवरुन्धे

इति श्रुत्या लक्ष्म्याः दक्षिणात्मक-गो-रूपत्वम् ।

यज्ञो गन्धर्वस् तस्य दक्षिणा अप्सरसः

दक्षिणाभिस् सह धन्यो ऽस्मि आश्चर्यो ऽस्मीति धन्याश्चर्योपाख्यानोक्त-रीत्या वाग्-आत्मक-श्री-
दक्षिणात्मकं लक्ष्मी-पतित्वात् च ।

यज्ञाद् भवति पर्जन्यः पर्जन्याद् अन्न-सम्भवः ।

इति अन्नोत्पत्ति-हेतुत्वेन सर्वत्रोक्तत्वात् । आदि-काले यस्माज् जगत्-सृष्टिः प्रलय-काले तस्मिन्
एव कारणे सर्व-शास्त्रेषु लयः प्रतिपादनात् । एवं यज्ञ-पुरुषस्य ब्रह्म-लक्षण-सद्-भावात् तद्-
अनुष्ठानं ब्रह्मोपासनम् एव । अत एव यज्ञ-मध्ये "परं ब्रह्म दृश्यत" इति सनत्-सुजातेन उद्योग-
पर्वणि उक्तम् ।

न पृथिव्यां तिष्ठति नान्तरिक्षे
नैतत् समुद्रे सलिलं बिभर्ति।
न तारकासु न च विद्युद्-आश्रितं
न चाभ्रषे दृश्यते रूपम् अस्य ॥

[[47]]

न चापि वायौ न च देवतासु
न चन्द्रे वा दृश्यते नोत् सूर्ये ।
नैव क्सु तन् नैव यजुर्ष्व् अथर्वसु
न चापि दृश्यत् अमलेषु सामसु ॥
राथन्तरे बार्हते वापि राजन्
महा-व्रतस्यात्मानि दृश्यते तत् ॥

इति । राथन्तरो -- रथन्तर-पृष्ठो यज्ञः । बार्हतः -- बृहत्-पृष्ठो यज्ञः । सर्व-यज्ञानां रथन्तर-बृहत्-
तद्-उभय-पृष्ठत्वात् महा-व्रतस्य तत्-पृष्ठत्वात् । तस्य आत्मनि राजन् - साम्नि सहस्र-स्तोभे
बृहती-सहस्रे च तद्-ब्रह्म दृश्यत इति पृथङ्-निर्देशः । एवं यज्ञ-मध्य एव ब्रह्मणो भगवतो
दृश्यमानत्वात् । हस्ति-गिरि-माहात्म्ये च -

धातुर् उत्तर-वेद्य-अन्तः प्रादुर् आसीज् जनार्दनः

इति यज्ञ-मध्ये भगवद्-आविर्भाव-दर्शनाच् च । यज्ञाराध्यत्वं भगवतः तद्-आराधनत्वं यज्ञस्य तद्-आराधकत्वं पुरुषस्य स्व-भावत एवेति श्रौतानां स्मार्तानां च कर्मणां भगवद्-आराधनत्वेन परमैकान्तिभिः कार्यत्वम् इति निश्चयः ।

०३ श्रौते पाञ्चरात्रांशाः ②

०१ मूल-मन्त्रः ③

अग्नि-होत्र--दर्श-पूर्ण-मास--सोम-यागादीनां श्रौतानां कर्मणां सात्त्वत-शास्त्रोक्त-मार्गेण मूल-मन्त्र-जप-पूर्वकं कर्तव्यत्वम्॥

मोक्ष-धर्मे -

काम्य-नैमित्तिकाजसा याज्ञिकाः परम-क्रियाः ।
सर्वं सात्वतम् आस्थाय विधिं च समाहितः ॥

इति अग्नि-होत्र--दर्श-पूर्ण-मास--सोम-यागादीनां श्रौतानां कर्मणां सात्त्वत-शास्त्रोक्त-मार्गेण मूल-मन्त्र-जप-पूर्वकं कर्तव्यत्वं सिद्धम् ।

सात्त्वतं विधिम् आस्थाय प्राक्-सूरि-मुख-निस्सृतम् ।
पूजयामास देवेशं तच्-छेषेण पितामहान् ॥
पितृन् ऋषींश् च विप्रांश् च संविभज्याश्रितांश् च सः ।
शेषान्न-भुक् सत्य-परः सर्व-भूतेष्व् अ-हिंसकः ॥
सर्व-भावेन भक्तस् सन् देव-देवं जनार्दनम् ।
अन्-आदि-मध्य-निधनं लोक-कर्तारम् अ-व्ययम् ॥

[[33]]

इति श्लोक-त्रयेण औपासन-वैश्वदेव--महा-यज्ञ--दर्शादि-श्राद्धानां स्मार्तानां कर्मणाम् अपि भगवद्-आराधनत्वेन पाञ्च-रात्रोक्त-विधिना कर्तव्यत्वम् उक्तम् । तत्रैवान्यत्र --

ते कार्त-युग-धर्माणः भागाः परम-संस्कृताः ।
प्रापुर् अदित्य-वर्णं तं पुरुषं तमसः परम् ॥
याः क्रियाः संप्रयुक्ताः स्युः एकान्त-गत-बुद्धिभिः ।
तत्-सर्वाः शिरसा देवः प्रतिगृह्णाति वै स्वयम् ॥
नारायण-परा वेदाः यज्ञा नारायणात्मकाः ।
तपो नारायण-परं नारायण-परा गतिः ॥
नारायण-परं सत्यं व्रतं नारायणाश्रयम् ।

नारायण-परो धर्मः पुनर्-आवृत्ति दुर्लभः ॥ प्रवृत्ति-लक्षणं चैव धर्मो नारायणात्मकः ।
ये केचित् सर्व-लोकेषु दैवं पित्र्यं च कुर्वतः ॥
दानानि च प्रयच्छन्ति तप्यन्ति च तपो महत् ।
सर्वेषाम् आश्रयो विष्णुः ऐश्वरं सर्गम् आस्थितः ॥
सर्व-भूत-कृतावासो वासुदेवो ऽपि चोच्यते ।

इत्यादिभिः श्लोकैर् नारायण-ध्यान-पूर्वकं तद्-आराधनत्वेन यज्ञादीनां कर्तव्यत्वम् उक्तम् ।
परम-संस्कृता इति परमेण मन्त्रेणाष्टाक्षरेण द्वादशाक्षरेण वा संस्कृता इत्य् अर्थः । गीतायां च
"काम्यानां कर्मणाम्" इत्य् आरभ्य

[[34]]

०२ प्रक्रिया③

...

अग्नि-होत्र-दर्श-पूर्ण-मास-व्रतोपायन-पशु-बन्ध-सोम-याग-महाग्नि-चयनानां परमैकान्ति-प्रपन्नैर्
अनुष्ठेय-क्रमः॥

आहिताग्निः सोम-याजी वा परमैकान्ती अनुदित-होमी स्नात्वा ऽग्नि-होत्रं कृत्वा
सन्ध्योपासनादिकं कुर्यात् । उदित-होमी तु स्नात्वा सन्ध्याम् उपास्य यथा-शक्ति गायत्री-मूल-
मन्त्रं च जपित्वा ऽभ्युक्षणाम्बु-गृहीत्वोदयात् पूर्वं मन्दिरं प्रविश्य भगवद्-गृहं अग्नि-होत्र-गृहं च
प्रोक्ष्य भगवन्तं प्रणम्य "स्व-शेष-भूतेन मये"ति श्लोकम् उक्त्वा "कृतं च करिष्यामी"त्य् आद्य्-
अग्नि-होत्रेज्यया "भगवतो बलेने"त्य् आद्य्-अनुसन्धाय "शं नो मित्र" इत्य् अनुवाकं जपित्वा
अष्टाविंशति-शत-कृत्वः प्रणवं द्वात्रिंशत् कृत्वो मूल-मन्त्रं च जपन् प्राणानायम्य

[[48]]

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ... पूष्णो हस्ताभ्याम्

"आचार्य-हस्तेन आचार्य-वचसा आचार्य-मनसा प्रातर्-अग्नि-होत्रं सायम्-अग्नि-होत्रं वा
होष्यामी"ति सङ्कल्प्य "धृष्टिर् असीत्या"दि कुर्यात् । अन्-अन्त-गरुड-विष्वक्सेनाद्य्-अन्-अन्त-
परिजन-परिच्छेदैर् ब्रह्मादिभिर् देवैः ऋग्-यजुस्-सामोपनिषद्भिः विष्णु-सूक्तेन श्रिया वाग्-देव्या
च स्तूयमान-भगवन् श्रियः पते "उद्बुध्यस्वेत्य्" उक्त्वा "उद्बुध्यस्वान्ते" इत्य् आदि कुर्यात् ।

यजमानः "ओं नमो नारायणाय ओम् उद्धरेत्य्" आदि स्पृशेत् "वाचात्वे"त्यादि त्वया विनिदधामि

ओं भूर् भुवस् सुवरो नमो नारायणाय विष्णु-रूपाहवनीये विष्णुम् अग्नि-पुरुषं
प्रतिष्ठापयामि

इति प्रणीय-मार्जनादि-रङ्गवल्-अन्तं कृत्वा मूल-मन्त्रम् उच्चरन् सुगन्धि-श्वेत-पुष्पैस् तुलसीभिर् वा आयतनानि वेदिं चालङ्कृत्य उदिते सन्ध्याम् उपस्थाय "इदं विष्णुर्" इत्य् उक्त्वा अथर्व-शिरस्-संज्ञ-नारायणोपनिषदा पूर्वोत्तर-पुरुष-सूक्ताभ्यां "हिरण्य-वर्णाम्" इति श्री-सूक्तेन "चित्तिस् सुग्" इत्य् आदिभिर् होतृभिर् "विष्णोर्नुकम्" इति विष्णु-सूक्तेन विष्णु-रूपान् अग्नीन् उपस्थाय "ओं नमो नारायणाय" इति जपित्वा "विश्व-दानीमि" इत्य् आदि-जपन् कर्माणि कृत्वा पूषासि, "अयक्ष्मावः" इत्य् आरभ्य "तद्-यजमानम् अमृतत्वे दधात्व्" इत्य् अन्तम् उक्त्वा

ओं नमो नारायणाय भगवन् इदं हविर् जुषस्व

"विष्णो हव्यं रक्षस्वे" इति कुर्यात् । पयसा मुमुक्षोः श्री-कामस्य वेति वैखानस-सूत्र-वचनात् प्रपन्नानां पयसा ऽग्नि-होत्रं नित्यम् एव । "अग्नेर् घृतं विष्णोस् तण्डुला" इति श्रुत्या तण्डुलैर् वा अन्येषाम् अन्यैर् द्रव्यैर् विकल्पः । हविष्य् अधिकृते ऽग्नि-पुरुषं यज्ञ-पुरुषं च ध्यायेत् ।

ओं नमो नारायणाय हविर् देवानाम् असि

"विद्युद्-असीत्य्" आद्य्-अभिक्रम्य

ओं तत् सत् भूर् भुवस् स्वरो नमो नारायणाय ओं सूर्यो ज्योतिः ओम् अग्निर् ज्योतिर्

इति जुहुयात् । एवम् उत्तराहुतिं हुत्वा "आश्रावय" "अस्तु श्रीषड्" "यज" "ये यजामह" वौषट् नमः ।

[[49]]

"आर्द्रं ज्वलती" इत्य् आदितः "अहम् एवाहं मां जुहोमि स्वाहे" इत्य् अन्तं त्वम् अस्माकं तवस्मासीत्य् उक्त्वा --

भगवान् अनेन हविषा प्रीयतां मे जनार्दनः । चतुर्भिश् च चतुर्भिश् च

इत्य् उक्त्वा हुत्वा सुचम् उद्गृह्येत् आदि कुर्यात् । अपर-होमादयो ऽपि मूल-मन्त्र-पूर्वकाः कार्याः । "ओं तत् सत् भूर् भुवस् स्वरो" "नमो नारायणाय" "उपप्रयन्त" इत्य् आद्य्-उपस्थानम् । अन्ते च मूल-मन्त्र-जपः । "पूषासि" "ओं नमो नारायणाय" इति हविः प्राशनम् । "सर्पेभ्य" इत्य् आदिषु सर्वत्रोद्देश-त्यागात् पूर्वं मूल-मन्त्र-जपः । प्रदक्षिणानन्तरं ब्रह्मार्पणम् । "नमस्ते गार्ह-पत्याय" "नमो ब्रह्मण्य-देवाय" "यज्ञेशाच्युत-गोविन्द" इति श्लोक-त्रयं "भूर् भुवस् सुवस्तार" इत्य् आरभ्य "सर्व-प्रहरणायुधो नमः" इत्य् अन्तम् उक्त्वा मूल-मन्त्रेण द्वयेन च नमस्कृत्य

अनेनाग्नि-होत्रेण स्वेनैव कृतेन स्वाराधनेन भगवान् श्रीमन्-नारायणः प्रीयताम्

इति भूमौ जलं निक्षेपेत् । एवं दर्श-पूर्ण-मासयोर् अप्य् आरम्भे

भगवन् यज्ञ-पुरुष-श्रियः पते, वाक्-पते भवान् यज्ञः भवन्तं यक्ष्यामहे, भवते यज्ञः क्रियते, भवत एव तुभ्यम् अयं यज्ञः, आदि-काले यज्ञ उत्पन्न, भवत एवायं यज्ञ अन्ते भवति यज्ञे वाचि श्रियां यज्ञं प्रतिष्ठापयाम

इत्य् अनुसन्धाय स्व-शेष-भूतेनेत्य् आदि-अग्नि-होत्रादिवत् सङ्कल्पं कुर्यात् ।

व्रतोपनयनानन्तरं पूर्वं नारायणोपनिषदादि-जपः कार्यः । व्रतोपायने सायं प्रातर् दोहयोर् मूल-मन्त्र-जपः कार्यः । अपां प्रणयने "ओं नमो नारायणाय" "भूर् अग्निं चेत् आहू-अग्नये जुष्टं निर्वपामि" "ओं नमो नारायणाय" "अग्निं होतारम् इह" "ओं नमो नारायणाय" "कस्त्वा युनक्ति" प्रोक्षणे ऽवहनने ऽधिवापे संवापे हविर् निर्देशे वेदि-करणे आज्य-निर्वापे आज्य-ग्रहणे बर्हिः प्रोक्षणे स्तरणे परिध्याधाने प्रस्तर-निधाने सुक्-साधने हविर् अभिधारणे हविर् अञ्जने हविर् आसादने आसन्नाभिमर्शनान्ते सर्वत्र मूल-मन्त्र-जप-पूर्वकं यजमान-मन्त्र-जपं कुर्यात् ।

[[50]]

अग्नि-होत्रवत् अत्रापि अग्नि-पुरुष-ध्याने यज्ञ-पुरुष-ध्यानं यष्टव्य-देवतात्मक-ध्यानं च कृत्वा मूल-मन्त्रेण ध्यात्वावाह्य मनसा अर्घ्य-पाद्याचामनीय-गन्ध-पुष्प-धूप-दीपादिकं समर्पयेत् । आनुशासनिके "एकाक्षरं द्व्य्-अक्षरम् एवे"ति श्लोके दृष्ट्वा "मनस्य् अर्चयित्वा स्म विप्रा" इत्य् उक्तेः अत्र मानसार्चनम् उक्तम् । ततः पञ्चोपनिषन्-मन्त्रैः मूल-मन्त्रेण च नमस्कृत्य तैर् एवाग्निम् अभिमन्त्र्य वाग्-यतः मूल-मन्त्रं जपन् प्रयाजादि-समिष्ट-यजुर् अन्तं भगवन्तं ध्यायन् प्रतिवष्ट-कारं "ओं तत् सत् भूर् भुवस् स्वरो नमो नारायणाय" "अग्नय इदं न मम" । "अग्नेर् अहं देव-यज्यया" इत्य् आदि-याजमान-मन्त्रान् जपन् आसीत । एवं विष्णु-क्रमादि "वृष्टिर् असी"त्य् अन्तं भगवद्-ध्यान-पूर्वकं कृत्वा अनेन पौर्ण-मासेन दर्शेन वा स्वाराधन-रूपेण स्वेनैव वेदात्मना वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्धात्मक-होत्र्-अध्वर्यु-ब्रह्माग्नीध्र-रूपेण स्व-प्रीत्य्-अर्थं स्वेनैव कृतेन मन्त्र-लोपादि-वर्जितेन "श्री-जनार्दनः प्रीयताम्" इति भूमौ जलं निक्षिप्य मूल-मन्त्रं यथा-शक्ति जपेत् । ततः कृष्णानुस्मरणम् ॥

पशु-बन्धे मूल-मन्त्रेण यूपं संस्पृश्य आज्येन अङ्क्त्वा यूपोच्छ्रयण-काले मूल-प्रभृति-चषाल-पर्यन्तं भूर् आदि-सप्त-लोकान् दशोत्तरावरणानि च ध्यात्वा चषाले वैकुण्ठ--दिव्य-लोक--दिव्य-जन-पद--दिव्य-नगर--दिव्य-विमानात्मकं परम-पदं ध्यात्वा तद्-उपरि अतिरिक्त-यूपाग्रे शेष-भोगे श्रिया सह आसीनं श्री-विष्णुं ध्यायेत् । पशोर् उपाकरण-ब्रह्म-रन्ध्रान् निर्गमय्य अर्चिरादि-मार्गेण भगवत्-पादारविन्द-प्राप्ति-पूर्वक-नित्य-कैङ्कर्यं प्रापयन् पशुं विसृज्य "पराडावर्तत" इत्य् आदि कुर्यात् । वपाम् आसन्नात् द्वा-त्रिंशत्-कृत्वो मूल-मन्त्रेणाभिमृश्य वपा-होमात् भगवन्तं ध्यायन् आसीत । अङ्ग-यागे पशोर् अवदानानि मूल-मन्त्रं जपन् अवद्येत् । अन्यत् सर्वं दर्श-पूर्ण-मासवत् ॥

[[51]]

सोमारम्भो दर्श-पूर्ण-मासारम्भवत् । वासो नवनीत-दीक्षादिषु दर्भ-पुञ्जील-पावने च मूलम् अत्र शिरस्कं भगवान् पवित्रम् इति पवित्र-मन्त्रं जपेत् । सोम-क्रयादि-संस्कारेष्व् अपि मूल-मन्त्र-जपः

। महा-रात्रे बुद्ध्वा आग्नीध्र-हविर्-धान-सुक्-वायव्य-सदो ऽभिमर्शनानि मूल-मन्त्रेण यजमानः कृत्वा खरे पात्रासादन-काले पृथक् पृथक् पात्राणि मूल-मन्त्रेणाभिमन्त्रयेत् । सुब्रह्मण्याह्वान-काले भगवन् इन्द्र श्रियः पते नारायण श्रिया सुब्रह्मण्यया वा देव्या सह नित्यैर् मुक्तैर् भागवतैर् ब्रह्मादिभिर् देवैर् ऋषिभिः पितृभिः ऋग्-यजुस्-सामोपनिषद्भिः दक्षिणारूप-गोभिर् अन्यैश् च सह सोमं पातुं हवींषि स्वीकर्तुं स्तोत्र-शस्त्र-वषट्--कारादिभिस् स्तूयमानस् सन् इह आगच्छ मां ऋत्विजः । यज्ञं सोमं हवींषि अन्यानि यज्ञीय-द्रव्याणि सव्यं रक्ष रक्ष । इमानि महाराधन-द्रव्याणि महाराधने यज्ञं पुरुष--शरीर-पुरुष--वेद-पुरुष, छन्दः--पुरुष--यज्ञ-पुरुष--अग्नि-पुरुष, वायु-पुरुषादित्य-पुरुष-महा-पुरुष, पुरुषोत्तम--उत्तम-पुरुष--वसुदेव, विष्णो, स्वीकृत्य मां स-पत्नीकं स-यज्ञं स-याजकं स-पशुं स-सोमं यथा-शक्ति दक्षिणासहितं फल-सङ्ग-कर्तृत्व-त्याग-रूप-ज्ञान-युक्तम् औपनिषद--परम-पुरुषाराधन--यज्ञ-शीलं भगवति न्यस्त-समस्तात्मात्मीय-रक्षण-भर--तत्-फलं यथा-विधि कर्मानुष्ठानासमर्थं यथा कथं चित् भगवत्-प्रीत्य-अर्थं भगवन् इत्य् आज्ञा-कैङ्कर्य-निरतं भवतैव यजमान-पत्नी-याजक-हविस्-सोमादि-रूपेण भगवता वेदात्मना क्रियत इति सर्वदा ऽनुसन्धातारं "मां रक्षस्वे"त्य् उक्त्वा मूल-मन्त्रेण द्वयेन च मनसा प्रणम्य गृह्यमाणेषु ग्रहेषु प्रतिग्रहं "उपयाम गृहीतो ऽसि ब्रह्मणेत्वा महस" "ओं नमो नारायणाये"ति ग्रहण-सादनयोर् मूल-मन्त्रं जपेत् ।

[[52]]

पञ्च-होत्रा ग्रहान् अभिमृश्य मूल-मन्त्रं द्वादशाक्षर-विष्णु-गायत्रीभिस् सर्वान् ग्रहान् अभिमृश्य सप्त-होतृ-होमं वा वाग्-रूप-श्रियः पतिं वाचस् पतिं ब्रह्मत्वेन ध्यायन् हुत्वा समर्पण-काले ऋग्-यजुस्-सामाथर्व-रूपिणीं यज्ञ-रूपां दक्षिणात्मिकां स्तोत्र-शस्त्र-मन्त्र-स्व-रूपां भगवतीं विष्णु-वक्षस्-स्थल-रूप-सदो-निवासिनीं नित्यानपायिनीं नीर-क्षीरवत् पृथग् विभजनानर्ह-परमात्म-नारायण-स्व-रूपिणीं वाचं देवीं श्रियं ध्यायेत् । प्रतिस्तोत्रं सोम-यागाद् आरभ्य भक्षण-पर्यन्तं वाग्-यतो मूल-मन्त्रं जपन् आसीत । वषा-मार्जनान्ते "तत् सत् भूर्-भुवस्-स्वरो नमो नारायणाये"त्य् उक्त्वा "द्वौ समुद्रौ" इत्य् आद्य-उपस्थानान्ते मूल-मन्त्र-जपः । एवं माध्यन्दिन-तृतीय-सवनयोः गायत्र-सामसु सवितृ-मण्डल--मध्य-वर्ति--सावित्री-रूपं ब्रह्म ध्यायेत् । पवमानेषु सोम-मण्डल--मध्य-स्थम् अमृतमयं मोक्ष-प्रदं ब्रह्म ध्यायेत् । रथन्तरे वा बृहत्-सामनि वा राजने वा स्तूयमानेषु सृष्टि-स्थिति-संहार-कर्तारम् अन्-अन्त-परिच्छिन्नाप्रमेय-सच्-चिद्-आनन्द-स्व-रूपं अन्-अन्त-कल्याण-गुणाकरं सर्व-व्यापिनं चेतनाचेतन-शरीरिणं सुसूक्ष्मं रथन्तरे वाग्-रूपं, बृहति-मनः-प्राण-रूपं, राजने परमात्म-स्व-रूपं भगवन्तं नारायणं ध्यायेत् । वाम-देव्ये सहस्र-शिरसं प्रजा-पतिं विराट्-पुरुषं वा ध्यायेत् । ब्रह्म-सामसु नौधस-श्वैतादिषु [[?]]नित्य-निरवद्य-निरतिशय-कैङ्कर्य-नियोजकं मोक्ष-फल-प्रदं श्रियः पतिं ध्यायेत् । अन्येषु सामसु "श्रीमन्-नारायणाये"ति ध्यायेत् । त्रयी विद्या हिङ्कार-इत्य् आद्य-उद्गीथोपासन-ब्राह्मणोक्त-प्रकारेण ब्रह्म वा ध्यायेत् । सोम-भक्षणे

। ओं नमो नारायणाय श्री-वाग्-जुषाणा सोमस्य तृष्य त्वम्

इति सोमं भक्षयेत् । दक्षिणां यथा-विभागं दत्त्वा

ओं नमो नारायणाय श्रीं सह स्त्रिया दक्षिणया लक्ष्म्या सहितः यज्ञ-पुरुषः श्री-कृष्णः
प्रीयताम्

[[53]]

इति जलं भूमौ सावयेत् । अवभृथे "आपो नारा" इत्य् उक्त्वा अप्सु श्रीमन्-नारायणं क्षीराब्धि-
शायिनं ध्यायेत् । उदवसानीयान्ते

भगवान् श्री-नारायणः स्वकीयैर् अस्मदीय-देहेन्द्रियान्तः करणैः स्व-शेष-भूतेन स्व-
नियाम्येन मया यथा-शक्ति यथा-मति सम्पादितैः स्व-शेष-भूतैर् द्रव्यैर् स्व-
निश्चित-भूत-वेद-मन्त्रैर् वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध-नारायण-स्व-रूपैः
होत्र-अध्वर्यु-ब्रह्मोद्गातृ-सदस्यैः केशवादि-द्वादश-व्यूह-रूपैः अन्यैर् ऋत्विग्भिः
मत्स्यादि-दशावतार-रूपैश् चमसाध्वर्युभिर् अन्-अन्तावतार-रूपैः सदस्यैर् ब्राह्मणैश्
च यथा कथञ्चिद् यथा-विधि यथा-शक्ति कृतेन स्व-महाराधन-रूपेण तत्-तन्-
नाम-यज्ञेन भगवान् प्रीयतां मे जनार्दनः

"ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः" "श्रुतुर्भिश्चे"ति श्लोक-द्वयम् उक्त्वा मूल-मन्त्रं द्वयं चोच्चरन् भूमौ जलं
सावयेत् । ततः सहस्र-कृत्वश् शत-कृत्वो वा यथा-शक्ति मूल-मन्त्रं द्वयं च जपेत् । ततः
कृष्णानुस्मरणं कुर्यात् । मध्ये प्रायश्चित्त-प्राप्तौ आरम्भे होम-जपेज्यासु च तद्-अन्ते च मूल-मन्त्र-
द्वयं जपित्वा

यथा विष्णुमयं सत्यं यथा विष्णुमयं हविः ।
यथा विष्णुमयं सर्वं पाप्मा मे नश्यतां तथा ॥

इति श्लोकम् उक्त्वा कृष्णानुस्मरणं कुर्यात् ।

महाग्नि-चयने काठकाग्नि-चयने च प्रतीष्टकं "तया देवतया अङ्गिरस्वद्ध्रुवा सीदे"त्य् उक्त्वा
मूल-मन्त्रं जपेत् । एवम् एकाह-अहीन-सत्र-अयनेषु काम्य-कर्मस्व अपि । एवं कृते तत्-
कर्मानुगुणः फलानुभवो नास्तीति वेद-व्यास--भाष्य-कार--वेदान्ताचार्यैः प्रतिपादितम् । एवम्
औपासन-वैश्व-देवादिषु गर्भाधान-पुंसवनादिषु संस्कारेषु तत्-तद्-आरम्भे तत्-तत्-प्रधान-होमे
तत्-तद्-अवसाने च मूल-मन्त्र-जपं कुर्वन् तानि तानि कुर्यात् । एवं तुला-पुरुषादीनि महा-दानानि
प्राजापत्यादीनि कृच्छ्राणि पुनर् अन्यान्य अपि व्रतानि कुर्यात् । सर्वत्र भाष्य-कारोक्त-चरम-
श्लोकार्थो ऽनुसन्धेयः ।

[[54]]

अथाग्नि-पुरुष-ध्यानम् ।

जुष्टोदमूना । अग्ने नय । चत्वारि शृङ्गा । सप्तते अग्ने ।

इति चतसृभिर् ऋग्भिर् अग्नि-पुरुषं ध्यात्वा

चतुर्-वेदी-चतुः-शुङ्गं सवन-त्रय-पादकम् ।
 स्वाहाकार-वषट्-कार-शीर्ष-द्वय-समन्वितम् ॥
 सप्त-होतृक-हस्ताङ्गं ऋग्-यजुस्-साम-बन्धितम् ।
 वर्षणं सर्व-कामानां महान्तं देवम् अच्युतम् ॥
 आगच्छन्तं दिशाभ्यो ऽग्निं जात-वेदस् सहोजसौ ।
 अजिरा-प्रभु-नामानं अथ वैश्वानराह्वयम् ॥
 नर्यापसं पङ्क्तिराधो विसर्प्य आह्वयम् उज्ज्वलम् ।
 एवं विधाष्ट-पुरुषं अग्निं ध्यायामि संस्तरे ॥

ओं नमो नारायणाय ओम् अग्नि-पुरुषाय नमः

इति मन्त्रेण आवाहनासनार्ध-पाद्याचमन-गन्ध-पुष्प-धूप-दीपादिकं मनसा कृत्वा अग्नि-मध्ये यज्ञ-पुरुषं ध्यायेत् । "सहस्रशीर्षा पुरुष" इत्यनेन मन्त्रेण सहस्र-शीर्ष--सहस्राक्ष--सहस्र-पाद--सहस्र-करं साहस्रं प्रजा-पतिं हिरण्य-गर्भं श्री-गर्भं प्रातर् अग्नि-होत्रं आदित्य-मण्डल-मध्य-वर्तिनं हिरण्य-सर्वाङ्गं हिरण्यं श्रीं हिरण्य-केशं पुण्डरीकाक्षं ऋग्-यजुस्-साम-गीतं त्रयी-रूपं उन्नामकं[[??]] स्वर्गादि-सत्य-लोकान्त-भोग्य--भोगोपकरण--भोग-स्थान--नियन्तारं

[[55]]

परञ्ज्योतिः परमात्मानम् अपहत-पाप्मत्वादि-गुणाष्टक-विशिष्टं नारायणं पञ्चोपनिषन् मन्त्रैर् मूल-मन्त्रेण चोच्चार्य आराधन-प्रकरणे वक्ष्यमाण-प्रकारेण हृदयाद् धस्तेन निर्गम्य हस्तेनाग्नि-मध्ये प्रवेशं ध्यात्वा पञ्चोपनिषन् मन्त्रैर् मूल-मन्त्रेण च प्रतिष्ठाप्य आवाहनासनार्ध-पाद्याचामनीय-गन्ध-पुष्प-धूप-दीपं मधु-पर्कादिकं मूल-मन्त्रेण मनसा कृत्वा होमं नैवेद्यत्वेन कल्पयेत् । सायम् अग्नि-होत्रे तु स्वाक्षि-बिम्बकं हिरण्य-सर्वाङ्गं हिरण्य-श्मश्रुं हिरण्य-केशं पुण्डरीकाक्षम् ऋग्-यजुस्-साम-गीतं लौकिक-वैदिक-वीणादि-काव्यादि-शब्द-वाच्यं भूम्य-अतलादि-भोग्य-भोग्योपकरण--भोग-स्थान--नियन्तारम् अपहत-पाप्मत्वादि-गुणाष्टक-विशिष्टं नारायणं पञ्चोपनिषन् मन्त्रैर् मूल-मन्त्रेण च ध्यात्वा आराधन-प्रकरणे वक्ष्यमाण-प्रकारेण हृदयाद् धस्ते निर्गम्य हस्तेनाग्नि-मध्ये प्रवेशं ध्यात्वा आवाहनादि-प्रातः कालवत् कुर्यात् । अन्-अन्तापरिच्छिन्नानन्द-स्व-रूपं प्राण-ब्रह्म मनसि ध्यायन् स्वयम् अग्नि-होत्रं जुहुयात् । आहवनीये प्राणाकाश-स्वर्गाभिन्न-वैद्युत-पुरुषं ध्यायन् जुहुयात् । [गार्ह-पत्ये पृथिव्य-अग्न्य-अन्नाभिन्नादित्यान्तर-वर्ति हिरण्य-पुरुषं ध्यायन् जुहुयात् दक्षिणाग्नौ अब्दि-नक्षत्राभिन्नेन्द्र-पुरुषं ध्यायन् जुहुयात् ॥]

०३ सोमे यज्ञ-वराह-ध्यान-प्रकारः ③

सोमे उत्तर-वेद्यां यज्ञ-वराहं मोक्ष-धर्मोक्ति-महा-पुरुषं वा ध्यायेत् ।

सहस्र-शीर्षं पुरुषं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् ।
 सहस्राक्षं सहस्राख्यं सहस्र-चरणं विभुम् ॥

सहस्र-बाहुं साहस्रं देवं नाम सहस्रिणम् ।
सहस्र-मुकुटोपेतं विश्व-रूपं महा-द्युतिम् ॥

[[56]]

अधृष्यं सर्व-भूतानां वाङ्मयं ब्रह्म-संज्ञितम् ।
शत-योजन-विस्तारम् उच्छ्रितं द्वि-गुणं ततः ॥
नील-जीमूत-सङ्काशं मेघ-स्तनित-निःस्वनम् ।
गिरि-संहननं भीमं श्वेत-दीप्तोग्र-दंष्ट्रिणम् ॥
विद्युद्-अग्नि-प्रकाशाक्षम् आदित्य-सम-तेजसम् ।
पीन-वृत्तायत-स्कन्धं दृप्त-शार्दूल-विक्रमम् ॥
पीनोन्नत-कटी-देशं सर्व-लक्षण-लक्षितम् ।
वेद-पादं यूप-दंष्ट्रं यज्ञ-दत्तं चिती-मुखम् ॥
अग्नि-जिह्वं तथा दर्भ-रोमाणं ब्रह्म-शीर्षकम् ।
अहो-रात्रे क्षण-धरं वेदाङ्ग-श्रुति-भूषणम् ॥
आज्य-नासं सुचा-तुण्डं साम-घोष-स्वनं प्रभुम् ।
सत्य-धर्ममयं देवं क्रम-विक्रम-सत्-कृतम् ॥
प्रायश्चित्त-महा-घोणं पशु-जानुं महा-कृतिम् ।
उद्गातृ-होम-लिङ्गं तं बीजैर् विधि-महा-बलम् ॥
धर्मासृजं वायु-चितं मन्त्र-स्थं सोम-शोणितम् ।
वेद-स्कन्धं हविर् गन्धं हव्य-कव्यादि-वेगिनम् ॥
प्राग्-वंश-कायं तेजिष्ठं नाना दीक्षाभिराजितम् ।
दक्षिणा-हृदयं देवं महा-सत्रमयं विभुम् ॥

[[57]]

उपाकर्मोष्ठ-रुचकं प्रवर्ग्यावर्त-भूषणम् ।
नाना-च्छन्दो-गति-पथं गुह्योपनिषद्-आननम् ॥
छाया-पत्नी-सहायं वै मणि-शृङ्गम् इवोच्छ्रितम् ।
महा-यज्ञ-वराहं तं स्मरामि पुरुषोत्तमम् ॥

इति यज्ञ-वराह-ध्यानम् ॥

०४ सोमे महा-पुरुष-ध्यान-प्रकारः ③

॥ अथ महा-पुरुष-ध्यानम् ॥

सहस्र-शीर्षं पुरुषं सहस्र-नयनं विभुम् ।
सहस्रोदर-बाहुं तं सहस्र-चरणं विभुम् ॥

शुद्ध-चन्द्र-प्रतीकाशं कोटि-सूर्य-सम-प्रभम् ।
 क्वचित् कुशानुवर्णाभं क्वचिद् धिष्ण्याकृति-प्रभम् ॥
 शुक-पत्र-निभं देवं क्वचित् स्फटिक-सन्निभम् ।
 नीलाञ्जन-चय-प्रख्यं जात-रूप-निभं क्वचित् ॥
 प्रवालाङ्कुर-वर्णं च श्वेत-वर्णं क्वचित् प्रभुम् ।
 क्वचित् सुवर्ण-वर्णाभं वैडूर्यम् इव दृक्छविम् ॥
 नील-वैडूर्य-सदृशं इन्द्र-नील-निभं क्वचित् ।
 मयूर-ग्रीव-वर्णाभं मुक्ता-हार-निभं क्वचित् ॥

[[58]]

तांस् तान् वर्णान् बहु-विधान् रूपे बिभ्राणम् अव्ययम् ॥
 ओंकारम् उद्गिरन्तं च सावित्रीं च तद्-अन्वयाम् ।
 आरण्यकं चतुर्-वेद-गतं गायन्तम् ईश्वरम् ॥
 वेदिं कमण्डलुं दर्भान् मणि-रूपांस् तथा सुचः ।
 अजिनं दण्ड-काष्ठं च ज्वलितं च हुताशनम् ॥
 यज्ञायुधानि चान्यानि बिभ्राणं सोम-रूपिणम् ।
 विष्णुं यज्ञं यज्ञ-पतिं पुरुषं लोक-जीवनम् ॥
 स्तूयमानम् अथो रुद्रैः दक्षिणं पक्षम् आश्रितैः ।
 तथादित्यैर् द्वादशभिः वामं पक्षं समाश्रितैः ॥
 अष्टभिर् वसुभिश् चैव स्तूयमानम् अथाग्रतः ।
 तथा नासत्य-दस्त्राभ्यां भिषग्भ्यां पृष्ठतस्तु स्तुतम् ।
 सप्तर्षिभिस् स्तूयमानं प्रजा-पतिभिर् अग्रतः ।
 वेद-यज्ञ-पशु-स्त्र्या च सरस्वत्या श्री-लक्ष्मी-कीर्ति-भूमिभिः ।
 परितस् संवृतं देवं नारादेन ध्रुवेण च। अम्भोधरैस् समुद्रैश् च मूर्तिम् अद्भिः समन्ततः
 ।
 सरिद्धिश् च सरोभिश् च स्तूयमानं महा-प्रभुम् ।
 चतुर्भिर् मूर्तिम् अद्भिश् च त्रिभिर् मूर्ति-विवर्जितैः ।

[[59]]

स्तूयमानं पितृ-गणैः देवं नारायणं प्रभुम् ।
 महान्तं यज्ञ-पुरुषं चिन्तयाम् अत्र केशवम् ॥

इति महा-पुरुष-ध्यानम् ।

अथवा

श्वेत-द्वीपाध्वरे स्थाने स्वयं भासावभासिते ।
 तेज इत्य् अभिविख्याते शुद्ध-सत्त्वमये शुभे ॥

वेदिम् अष्ट-तलोत्सेधां अधितिष्ठन्तम् ईश्वरम् ।
 एक-पाद-स्थितं देवं ऊर्ध्व-बाहुम् उदङ्-मुखम् ॥
 साङ्गान् वेदान् उच्चरन्तं तपः परमम् आस्थितम् ।
 प्रिय-भक्तं परमात्मानं भगवन्तं द्विज-प्रियम् ॥ अर्च्यमानं सुर-गणैः सदा भागवत-
 प्रियम् ।
 सृष्टि-स्थित्य्-अन्त-कर्तारं बान्धवं भक्त-वत्सलम् ॥
 कर्तारं कारणं चैव कार्यं चातिबल-द्युतिम् ।
 ब्रह्म-रुद्रादि-देवैः दैत्य-दानव-राक्षसैः ।
 नागैर् यक्षैश् च गन्धर्वैः सिद्धैर् राजर्षिभिस् तथा ॥
 ब्रह्मर्षिभिः हव्य-कव्यैः सततं विधि-पूर्वकम् ।
 इज्यमानं देव-देवं पूज्यमानं पदाब्जयोः ॥

[[60]]

परमैकान्तिभिर् दत्तं हव्यं कव्यं विधानतः ।
 शिरसा प्रतिगृह्णन्तम् आदरातिशयात् स्वयम् ॥
 चिन्तयामि श्रियोपेतं सदा नारायणं विभुम् ॥

०४ श्रौते हिंसा②

...

आक्षेपः③

प्रपन्नानां परमैकान्तिनां हिंसा-युक्तेषु श्रौत-कर्मसु प्रवृत्तिर् अयुक्तेत्याक्षेपः॥

परमैकान्तिनां श्रौत-कर्मसु हिंसादि-युक्तेषु उपरि चरादीनां प्रवृत्त्य्-अदर्शनात् कथं तेषां करणीयत्वम् ? कृतेष्व् अपि श्रौत-कर्मसु तत्-फल-भोगस्यावश्यं भावित्वात् ।

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प-कोटि-शतैर् अपि

इति वचनात् ।

एवम् एवामुत्र पुण्य-चितो लोकः क्षीयते

इति क्षयिष्णुत्वेनावगतानां तत्-फलानां परमैकान्त्य्-अनपेक्षितत्वात्वाच् च ।

पिष्ट-पशु-खण्डनम्③

प्रपन्नानां परमैकान्तिनां पिष्ट-पशु-खण्डन-पूर्वकं भगवद्-आराधन-रूप-श्रौत-
कर्मानुष्ठानावश्यकता-निरूपणम्॥

अतः प्रपन्नानां श्रौत-कर्मसु प्रवृत्तिर् अयुक्तेति चेत् मैवं पाञ्च-रात्रे मन्त्र-सिद्धान्तागम-सिद्धान्त-
तन्त्र-तन्त्रान्तर-सिद्धान्त-रूपेषु चतुर्ष्वपि मन्त्र-सिद्धान्त-मार्गेण तापादि-पञ्च-संस्कारैः
चक्राब्ज-मण्डले यथा-विधि दीक्षितान् परमैकान्तिनः प्रति श्रौत-कर्मणां भगवद्-आराधन-
रूपत्वेन विहितत्वात्वात् ।

[[27]]

उपरिचरोपाख्यानम्③

महा-भारतस्थोपरिचरोपाख्यान-तात्पर्य-निरूपणम्॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर् वैश्यैः शूदैश् च कृत-लक्षणैः ।
अर्चनीयश् च सेव्यश् च नित्य-युक्तः स्व-कर्मसु ॥
सात्वतं विधिम् आस्थाय गीतस् सङ्कर्षणेन यः ।
द्वापरस्य युगस्यान्ते ह्य आदौ कलि-युगस्य च ॥

इत्थं अत्र सङ्कर्षणोक्त-सात्वत-शास्त्र-विधौ स्थित्वा ताप-पुण्ड्रादि-कृत-लक्षणैः वेदोक्त-नित्य-
नैमित्तिकादि-स्व-स्व-कर्मसु नित्य-युक्तैस् तत्-कर्मसु भगवतो ऽर्चनीयत्व-सेव्यत्वस्योक्तत्वात्वात्
। मोक्ष-धर्मे उपरि-चर-वसूपाख्याने

काम्य-नैमित्तिकाजसा याज्ञिकाः परम-क्रियाः ।
सर्वं सात्वतम् आस्थाय विधिं चक्रे समन्वित

इति वसुनापि नित्य-नैमित्तिक-काम्यानां यज्ञानां पाञ्च-रात्रोक्त-मार्गेण कृतत्वेनोक्तत्वात् ।
विशिष्य तेन अश्व-मेधादि-काम्यानां कर्मणाम् अपि तत्रैवानुष्ठितत्त्व-प्रतिपादनाच् च । न च
वसुनापि नित्य-नैमित्तिक-काम्येषु यज्ञेषु पिष्ट-पशोर् एव कृतत्वाद् एव ऋषि-संवादे साक्षि-भूतेन
अनेन देवेषु पक्ष-पातात् । पश्व्-आलम्बे धर्मत्वेन प्रतिपादिते सति अस्य वसोः शास्त्र-वचन-
दोषात् गर्ते पातित्य-दर्शनाच् च पिष्ट-पशु-सहित-यज्ञ-कर्मस्व् एव प्रवृत्तिर् युक्ता न तु पश्व्-
आलम्ब-कर्मस्व् इति वाच्यम् । तत्रैव मोक्ष-धर्मे अधिकार-चोदनाध्याये कृत-युगे पिष्ट-पशुः त्रेता-
द्वापरयोः पश्व्-आलम्बः कलि-युगे धर्मस्यैक-पादेन स्थितिर् इत्थं उक्त्वा-

पिष्ट-पशुः कार्त-युगे③

पिष्ट-पशुः कार्त-युग-धर्म-निष्ठाधिकारि-विशेष-विषयः॥

गुरवो यत्र पूज्यन्ते साधु-वृत्ताश्च मानिताः ।
 वस्तव्यं तत्र युष्माभिः यत्र धर्मो न हीयते ॥
 यत्र वेदाश्च यज्ञाश्च दमः सत्यं तपस् तथा ।
 हिंसा च धर्म-संयुक्ता प्रचरेयुस् सुरोत्तमाः ॥
 स वै देशो हि वस्तव्यो मा वो ऽधर्मः पदास्पृशेत् ।

[[28]]

इत्यादिना क्वचित् क्वचित् पश्व-आलम्ब-युक्त-धर्माविर्भावस्योक्तत्वात् । तस्मात् कृत-युगादि-
 व्यवस्थया पिष्ट-पशोः साक्षात् पशोश्च चालम्बः । पिष्ट-पशु-विधेश्च इदानीं पठ्यमान-शाखासु
 सूत्रेषु चादर्शनेन तत्-प्रयोगस्याधुनिकैर् ज्ञातुम् अ-शक्यत्वात् बहु-शाखा-दर्शनां कर्त-युगाणाम्
 ऋषीणाम् एवात्राधिकारो युक्तः । नन्व एवं साक्षात् पश्व-आलम्बे "न हिंस्याद् इति" शास्त्र-
 विरोधः । न चाग्निषोमादि-हिंसायाः विशेष-विधानेन "न हिंस्याद्" इति शास्त्रस्य आहवनीयादि-
 शास्त्रस्य विशेष-विहित-पद-हामेतर-होम-विषयत्ववत् तद्-इतर-हिंसा-विषयत्वम् इति वाच्यम् ।

प्रत्यक्ष-पशु-याग-समर्थनम्③

पदे क्रियमाणस्य होमस्याहवनीये कर्तुम् अशक्यतया विरोधेनाहवनीय-शास्त्रस्य तद्-इतर-विशेष-
 विषयत्वे ऽपि इहाविरोधेन उत्सर्गापवाद-न्यायासम्भवाद् अग्नीषोमीय-शास्त्रस्य अहिंसा-शास्त्रस्य
 च क्रमेण क्रतूपकारं प्रत्यवायश्च प्रतिपश्व-आलम्बस्य साधनत्वावबोधकत्वात् । न
 चाग्नीषोमीयादि-विधिना बलवद्-अन्-इष्टाजनकत्व-विशिष्टेष्ट-साधनत्व-शक्तेन सह बलवद्-
 अन्-इष्ट-जनकत्व-बोधकाहिंसा-शास्त्रस्य विरोधो ऽवर्जनीय इति वाच्यम् । अहिंसा-
 शास्त्राविरोधाय अग्नीषोमीयादि-विधेः विशिष्ट-शक्तस्यापि श्येनादि-विधेर् इव इष्ट-साधनत्व-
 मात्र-परत्वस्योचितत्वाद् इति चेत् मैवं अग्नीषोमीय-पश्व-आलम्बस्य हिंसात्वासम्भवात् । तद् धि
 न तावत् दुःख-जनकत्व-मात्रम् । छेदनादेः चिकित्सक-व्यापारस्यापि हिंसात्वापत्तेः । नापि प्राण-
 वियोगोद्देश्यक-व्यापारत्वं, सर्व-स्व-हरणादेः हिंसात्वानापत्तेः सर्वत्व-हरणादेर् अपि हिंसकत्वेन
 लोक-व्यपदेशात् । न चायम् औपचारिकः वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात् । किन्तु परम-
 प्रयोजनापर्यवसायित्वे सति तादात्विक-दुःख-जनकत्वं । चिकित्सादि व्यावृत्तये कलञ्ज-
 भक्षणादि-व्यावृत्तये च विशेषण-द्वयम् ।

[[29]]

ततश्च चाग्नीषोमीयादि-व्यापारस्य तादात्विकाल्प-दुःख-जनकत्वे ऽपि परम-प्रयोजन-
 पर्यवसायितया उक्त-लक्षणाभावात् श्रुत्या हिंसात्व-निषेधाच्च न हिंसा-शास्त्र-निषेध्यता । अ-
 हिंसन् सर्व-भूतान् अन्यत्र तीर्थंभ्य इत्य् अत्र तु अग्नीषोमीय-पश्व-आलम्बस्य पामर-प्रसिद्ध्या
 हिंसात्वम् आशङ्क्य अन्यत्र तीर्थंभ्य इत्य् उक्तम् । अत एव "तस्माद् यज्ञे वधो ऽवधः" इति मनु-
 वचनेन पामर-प्रसिद्ध्यावध्यत्वेन शङ्कितस्य पश्व-आलम्बस्य तत्त्व-दृष्टि-बलाद् अवध्यत्वम्
 उक्तम् । अत एव भगवता वेदान्ताचार्येण तात्पर्य-चन्द्रिकायां अग्नीषोमीयादि-पश्व-आलम्बस्य

"न वा उवे तन्मियसे" इत्य् आदि-हिंसात्वाभावः, पिष्ट-पशोः कार्त-युग-धर्म-निष्ठाधिकारि-विशेष-नियतत्वं च सिद्धान्ति-तम् ।

स्व-धर्मम् अपि चावेक्ष्य न विकम्पितुम् अर्हसि ।
धर्म्याद् धि युद्धाच्च छेयो ऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

इति श्लोक-भाष्य-व्याख्यानावसरे "यज्ञानां जप यज्ञो ऽस्मीति" तत्रत्य-भाष्य-व्याख्यानावसरे च अनुगीतायाम् अध्वर्यु-यति-संवादे -

प्रोक्ष्यमाणं पशुं दृष्ट्वा यज्ञ-कर्मण्य् अथाब्रवीत् ।
यतिर् अध्वर्युम् आसीनः हिंसेयम् इति कुत्सयन् ॥
तम् अध्वर्युः प्रत्युवाच नायं छागो विनश्यति ।
श्रेयसा योक्ष्यते जन्तुः यज्ञ-श्रुतिर् इयं तथा ॥
यो ह्य् अस्य पार्थिवो भागः पृथिवीं सम्यग् इष्यति ।
यद् अस्य वारिजे किञ्चित् तद्-अपः प्रतिपद्यते ॥

[[30]]

सूर्यश् चक्षुर् दिशः श्रोत्रं प्राणो ऽस्य दिवम् एव च ।
आगमे वर्तमानस्य न मे दोषो ऽस्ति कश्चन ॥

शान्ति-पर्वणि व्यास-युधिष्ठिर-संवादे धर्माधर्म-विभागाध्याये

वृथा पशु-समालम्भं नैव कुर्यान्न न कारयेत् ।
अनुग्रहः पशूनां हि संस्कारो विधि-चोदितः ॥

इत्य् आदिभिः श्लोकैः मन्त्र-महिम्ना पशोः प्राण-चक्षुः श्रोत्रादीनां स्व-स्व-योनिषु सूर्यादिषु प्रापितत्वात् वह्नाव् इन्धन-प्रक्षेपवत् संज्ञपनस्य अ-हिंसात्वेनोपपादितत्वाच्च न पिष्ट-पशुः कार्यः । अमुम् एवार्थं हृदि निधाय गीता-भाष्ये भगवता भाष्य-कारेणोक्तम्

अग्नीषोमीयादिषु न च हिंसा पशोर् निहीनतर-च्छागादि-देह-परित्याग-पूर्वक-कल्याण-देह-स्वर्गादि-प्रापकत्व-श्रुतेर्

इति । श्री-भाष्ये च "अशुद्धम् इति चेन्न न शब्दात्" इति सूत्रे शब्दाद् अग्नीषोमीयादेः संज्ञपनस्य स्वर्ग-लोक-प्राप्ति-हेतुतया हिंसात्वाभाव-शब्दात् पशोर् हि संज्ञपन-निमित्तां स्वर्ग-लोक-प्राप्तिं वदन्तं शब्दम् आमनन्ति । "हिरण्य-शरीरः ऊर्ध्व-स्वर्गं लोकम् एति" इत्य् आदिकम् अतिशयिताभ्युदय-साधन-भूतो व्यापारो ऽल्प-दुःखतो ऽपि न हिंसा प्रत्युत रक्षणम् एव । तथा च मन्त्र-वर्णः

न वा उवे तन्मियसे नरिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिस्सुगेभिः । यत्र यन्ति सुकृतो नापि दुष्कृतः तत्र त्वा देवस्सविता दधातु

[[TODO: परिष्कार्यम्]]

इति। चिकित्सकं च तादात्विकल्प-दुःख-कारिणम् अपि रक्षकम् एव वदन्ति । पूजयन्ति च तज्ज्ञाः । इति उपरि-चर-वसुना ऽपि --

पशु-हिंसा वारिता च यजुर्-वेदादि-यत्नतः ।
न चाहं वारये हिंसां द्रक्ष्याम्य् ऐकान्तिको हरिम् ॥

[[31]]

इति पिष्ट-पशुस् त्वया कारित इति वदन्तं क्रुद्धं बृहस्पतिं प्रति वाक्यस्योक्तत्वात् तस्यापि हिंसा त्व् अ-बुद्ध्य-अभाव एव । यजुर्-वेदे कस्याञ्चिच् छाखायां पिष्ट-पशु-विधाने ऽपि तच्-छाखायाः प्रच्छन्नत्वात् आपस्तम्बादिभिर् अन्-उक्तत्वात् परम-भागवतेन वैष्णव-शास्त्र-प्रवर्तकेन परमैकान्तिनाम् अग्रसरेण सर्वदा नरायण-परेन नित्य-नैमित्तिक-काम्य-यज्ञानां नारायण-ध्यान-पूर्वकं तद्-आराधनत्वेन विधायकेन भगवता विखनसा ऽपि वैखानस-सूत्रे ऽपि पिष्ट-पशोर् अन्-उक्तत्वाच् च तस्य न कार्यत्वम् इत्य् अलम् अतिविस्तरेण ।

०५ नष्टाग्निभिर् जपः②

उत्सृष्टाग्निर्, आहिताग्निः, विधुरः सन्न्यासि-वान-प्रस्थौ अग्नि-होत्रादि-मन्त्राणाम् औपासन-मन्त्राणां च सायं प्रातर् नित्यं जपावश्यकता॥

उत्सृष्टाग्निर् आहिताग्निः विधुर आहिताग्निः सन्न्यासि-वान-प्रस्थौ चाग्नि-होत्र-मन्त्रान् औपासन-मन्त्रांश् च सन्ध्योपासनानन्तरं सायं प्रातर् नित्यं त्रयोदश्य्-आदि-प्रदोष-काले ऽपि जपेयुः । तद्-उक्तं बोधायन धर्म-प्रश्ने -- सन्न्यान्यासि-धर्म-प्रकरणे षोडशे खण्डे,

सायं प्रातर् अग्नि-होत्र-मन्त्रान् जपेत् वारुणीभिस् सायं सन्ध्याम् उपस्थाय मैत्रीभिः
प्रातः

अन्-अग्निर् अनिकेतस्यादश-रणो मुनिः । भैक्षार्थी-ग्रामम् अन्विच्छेत् स्वाध्याये
वाचम् उत्सृजेद्

इति । तस्मिन् एवैकादशे खण्डे

प्राणानि-होत्र-मन्त्रांस् तु निरूढे भोजने जपेत् । त्रेताग्नि-होत्र-मन्त्रांस् तु द्रव्यालाभे
यथा जपेद्

इति । अत्राग्नि-होत्र-शब्दो दर्श-पूर्ण-मासादीनाम् उपलक्षकः । तेषाम् अपि यावज् जीवाधिकार-श्रुतेः । वैश्व-देव--बलि-हरणादि-प्राणानि-होतृ-करणाशक्तौ वैश्व-देवादि-मन्त्र-जपवन् नित्यं सायं प्रातः दर्श--पूर्ण-मास्योः पशु-आग्रयण-चातुर्मास्य-कालेषु अग्नि-होत्र--दर्श-पूर्ण-मास--पशु-

बन्धाग्रयण--चातुर्मास्य-मन्त्राणां आध्वर्यव-हौत्र-याजमानानुक्रमणिकाग्रन्थ-प्रकारेण पूर्वम्
आहिताग्नीनाम् उत्सृष्टाग्नि-विधुर-सन्यासि-वान-प्रस्थानां जपः कार्य एव ।

[[61]]

यद् वा "उभा वामिन्द्राग्नी"त्य् अनुवाकं विना "इषे त्वोर्जत्वे"ति प्रश्नस्य, "सत्यं प्रपद्ये" इति प्रश्नस्य "सन्त्वा सिञ्चामी"ति प्रश्ने "यथा वै समृतसोमा" इत्य् अनुवाक-पर्यन्तम् अच्छिद्रे "याः पुरस्ताद् देवादेवेषु परिस्तृणीते"त्य् अनुवाक-त्रयस्य चाध्ययन-क्रमेण दर्श-पूर्ण-मासाग्रयण-चातुर्मास्यार्थं जपः कार्यः । आग्रयणे "सप्रत्नवन्नवीयसे"त्य् अनुवाकोक्ता ऋचो याज्यानुवाक्यार्थं जपितव्याः । पशु-बन्धे "अत्यन्नानगाम्" इत्य् आरभ्य समुद्रं गच्छस्वाहेत्य् अनुवाकान्तस्य "प्रजापतेर् जायमाना" इत्य् अनुवाकस्य च "अज्जन्ति त्वाम् अध्वरे देवयन्त" इति प्रश्नस्य च जप इति विशेषः । चातुर्मास्येषु "प्रदेवं देव्या" इति "अग्नेयं यज्ञम् अध्वरम्" इति "इन्द्राग्नीरोचना दिव" इति "अग्निर् वृत्राणि जङ्घनद्" इति चतुर्णाम् अनुवाकानाम् "अदितिर्न उरुष्यतु" "महीमूषु मातरम्" "इदं विष्णुः प्रतद्विष्णुः" "इन्द्रं वयं शुनासीरम्" "इन्द्राय शुनासीराय" "आवायो प्रयाभिर्" "उद् उ त्वं", "चित्रम्" इत्य् एतासां दशानाम् ऋचां जप इति विशेषः । अन्यत् सर्वं दर्श-पूर्ण-मास-मन्त्र-जपवत् ।

प्रतिवसन्तं सोम-याजिनः सोमार्थम् "आप उन्दन्तु" "देवस्य त्वा" "आददे ग्रावा सी"ति त्रयाणां प्रश्नानाम् अन्त्यानुवाक-वर्जितानां

प्रजा-पतिर् अकामयत, एष ते गायत्र, यो वा अयथा देवतं, निग्राभ्यास् स्थ, यो वै देवान्, जुष्टोवाचः, यो वै पवमानानां, त्रीणिवाव, परिभूः, स्फः स्वस्तिः, भक्षे हि, महीनां, देव सवितः श्येनाय, उपयामगृहीतोसि वाक्षसत्, अग्ने तेजस्विन्, वायुर्हिङ्कर्ता, वसवस्त्वा, आयुर्दा अग्ने, सूर्यो मा, सन्त्वा नह्यामि, उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्व

इति द्वाविंशत्य् अनुवाकानां

चित्तिः, पृथिवी होता, अग्निर् होता सूर्यन्ते चक्षुर् महा-हविर होता वाग्धोता

इति षण्णाम् अनुवाकानां "ब्रह्मसन्धत्तम्" इत्य् अनुवाकस्य "सक्षेदं पश्ये"त्य् आदितः प्रश्नान्तस्य च दर्श-पूर्ण-मास-पशु-बन्धोक्त-मन्त्रैः सह जपः कार्यः ।

[[62]]

ऋग्-वेद--साम-वेदाव् अधीतौ चेत् आज्यादि-शस्त्र-गत "प्रवोदेवाये"त्य् आदि-सूक्तानाम् "उपास्म" इत्य्-आदि-गायत्रामहीयवादि-साम्नां जपः कार्यः । अन्-अधीत-वेद-त्रयश् चेत् वसन्त-काले "भूर् भुवस् स्वर" इति व्याहृतीनां पञ्च-सहस्र-जपं कुर्यात् ।

चित्तिः, पृथिवी होता, अग्निर् होता, सूर्यं ते चक्षु, महा-हविर होता, वाग्धोता

इति, चतुर् होतृन् वेति सहस्र-कृत्वः शत-कृत्वो वा जपेत् । महा-हविर् होतेति सप्त-होतारं वा सहस्र-कृत्वो जपेत् । अथवा वसन्त-काले एकस्मिन् शुक्ल-पक्षे पञ्चाहं नियम-युक्तस् सन् एक-विंशति-सहस्र-कृत्वः प्रणवं जपेत् । भगवता बोधायनाचार्येण अन्-आहिताग्नीनाम् अ-शक्तानां योगिनाम् औपासनाग्नाव् अग्नि-होत्रस्य प्रत्याम्नायत्वेन "चित्तिस् सुग्" इति दश-होतृ-होमस्य दर्श-पूर्ण-मासयोः "पृथिवी होते"ति चतुर्होतृ-होमस्य तत्-तत्-कालेषु विधानात् तज्-जपः सन्न्यासिनां कार्यः इत्य् अस्माभिर् उक्तः । व्याहृतीनां वेद-त्रयात्मकत्वात् विधुर-वान-प्रस्थानां जपः । सन्न्यास्यासिनां तु प्रणव-जप इति विवेकः॥

चातुर् मास्यानां यावज्-जीव-करण-पक्षम् आश्रित्य कृत-सङ्कल्पानां तत्-काले तन्-मन्त्र-जपः । सकृत्-प्रयोग-पक्षे तु तन्-मन्त्र-जपो न कार्य इति सर्वं समञ्जसम् । अयम् एव जप-यज्ञ इत्य् उच्यते । न तु अर्थासमर्थ-विद्वद्-गृह-स्थस्य जप-यज्ञः । तस्य अधिकारित्वेन एतेषां साक्षाद् अ-करणे प्रत्यवाय-वचन-शत-दर्शनात् ।

[[63]]

०६ आहिताग्नि-यति-दाहः②

पूर्वम् आहिताग्नीनां यतीनां दहन-संस्कार-निरूपणम्॥

पूर्वाश्रमे प्रतिवसन्त-सोम-याजिनां यतीनां वसन्त-काले सोम-याग-मन्त्राणाम् अपि जपो नित्यः । एवं विधुर-वान-प्रस्थयोर् अपि आत्मनि समारोपिताग्नीनां पूर्वम् आहिताग्नि-सन्न्यासीनां मृतौ वैखानस-सूत्रे बोधायन-सूत्रे च त्रेताग्निभिर् ब्रह्म-मेध-युक्त-पितृ-मेध-विधिना दहन-संस्कारस्योक्तत्वात् तेषां आमरणम् अग्नि-होत्रादि-मन्त्र-जप-यज्ञो नित्यः । न च आपस्तम्बादिभिर् यतीनां दहन-संस्कारस्यानुक्तत्वात् कथं तत्-करणम् इति वाच्यम् । खनन-संस्कारस्याप्य् अन्-उक्तत्वात् तस्याप्य् अ-करणं स्यात् । किञ्च आपस्तम्बादिभिर् "न तम् अन्येन त्रेताग्निभ्यो दहेद्" इति विज्ञायत इति त्रेताग्निं विना कृत-संस्कारस्य प्रतिषिद्धत्वात् । न चायम् आहिताग्नि-गृह-स्थ विषय इति वाच्यम् । वैखानस-बोधायन-सूत्रयोर् अपि पितृ-मेधं प्रश्ने "न तम् अन्येन त्रेताग्निभ्यो दहेद्" इति श्रुतिम् आपस्तम्बादिवद् उदाहृत्य यति-संस्कार-प्रकरणे यतीनाम् अन्-आहिताग्नीनां खनन-संस्कारः । आहिताग्नि-यतीनां तु त्रेताग्नि-संस्कार एव इति व्यवस्थापनात् न गृह-स्थ-विषयः । तस्माद् आहिताग्नि-यति-विधु-अ-पत्नीक-वान-प्रस्थानाम् अग्नि-होत्रादि-मन्त्र-जप-यज्ञो नित्यः । यतीनां दहन-संस्कार-प्रयोगः अस्मद्-आचार्य-कृते वैष्णव-वैशेषिक-पितृ-मेध-प्रयोग-दीपे द्रष्टव्यः । अथवा "प्रजापतिः प्रजास् सृष्ट्वा व्यसंसत" "प्रजा-पतिः पुरुषम् असृजत", इति यजुर्-वेदे अनुवाक-द्वयेन साम-ब्राह्मणे प्रजा-पतिर् वै सहस्र-संवत्सरं सत्रम् असृजतेति खण्डेन च दर्श-पूर्ण-मासाग्रयण-काम्येष्टि-चातुर्मास्य-पशु-बन्धाग्निष्टोमादि-एकाह-द्वादशाहाद्य्-अहीन-सत्र-गवाम् अयनादि-विश्व-सृजाम् अयन-पर्यन्त-संवत्सर-सत्राणाम् अग्नि-होत्रान्तरं भावोक्त्या नित्यं सायं प्रातर् अग्नि-होत्र-मन्त्र-जपेनैव तत्-तन्-मन्त्र-जपः कृत इत्य् आहिताग्नि-यति-विधुरापत्नीक-वान-प्रस्थैस् सायं प्रातर् अग्नि-होत्र-मन्त्राणाम् एव जपो नियमेन अवश्यं कार्यः । न तु तत्-तत्-कालेषु दर्श-पूर्ण-मासादि-मन्त्र-जपः कार्यः । अमुम् एवार्थं मनसि निधाय बोधायनेन

। सायं प्रातर् अग्नि-होत्र-मन्त्रान् जपेद्

इत् उक्तम् । तद्-एतावद् एव प्रणम्य भगवत्-सन्निधि-भूमिं गत्वा भगवते यत् किञ्चिद् उपहारं दत्त्वा भगवन्तं श्रुति-सुखैः स्तोत्रैः स्तुत्वा पूर्व-कालोक्त-वर्त्मना यथा-विधि पत्र-पुष्प-फलैः धूप-दीप-गन्धादिभिः जप-ध्यानार्चन-स्तोत्रैर् भगवन्तम् अर्चयेत् । केवलं पुष्पाञ्जलिं वा दद्यात् । ततो भगवन्तं पुनः प्रणम्य पितराव् अभिवाद्य वृद्धाभिवादन-गुरूपासन-तद्-धिताचरणानि कृत्वा परस्य गवे गोमती-विद्यया ग्रास-मुष्टिं दत्त्वात्वा

Appendix - +Dyugangā द्युगङ्गा①

Goals ध्येयानि②

Dyugangā (<https://rebrand.ly/dyuganga>) is a work group dedicated to the promotion of ever-victorious Hindu ideals and arts. It's current focus is in presenting important texts for easy study.

The texts may be presented as

- audio files (eg: [MahAbhArata audio book project](#)),
- as web pages (eg. [Apastamba-gRhya-sUtra](#), [Apastamba-dharma-sUtra](#), [EkAgnikANDa commentary](#), [manu-smRti](#), [raghuvaMsha](#), more [kalpa-texts](#), [tattva-texts](#), [universal subhAShita DB](#)),
- as dictionaries (eg: [stardict](#))
- ebooks distributed on various platforms - (eg: [vishvasa.github.io/book-pub](#), amazon, google play - [SVK SVT](#) क्). Formats include md, pdf (A4, A5), epub, azw3, html, etc.

We distribute these for free, and under a CC BY 4.0 license.
(Platforms may levy their fees.)

You may subscribe to mail-streams for past and future announcements ([dg](#), [hv](#), [san](#)).

The choice of material heavily depends on the special interests of its current lead (vedas, kalpa, purANa-s).

संस्कृतानुवादः③

द्युगङ्गा नाम कार्यसंस्था ऽजेयानां भारतीयपुरुषार्थपरिकल्पनानाञ्च हिन्दुककलानाञ्च प्रसारणाय वर्तते। तदीयस् स्थूलोद्देशोऽधुना प्रमुखग्रन्थानाम् अध्ययनसौकर्याय प्रस्तुतिः। ततो ग्रन्थसङ्कलनकेन्द्रम् इति वक्तुमलम्।

ग्रन्थानाम् प्रस्तुतिर् ध्वनिसञ्चिकाभिस् स्यात् (यथा महाभारतपारायणप्रसारणे), जालक्षेत्रपृष्ठैर् वा (यथा विश्वासस्य मन्त्रटिप्पणीषु, एकाग्निकाण्डटीका), शब्दकोशैर् वाऽपि ([stardict](#))।

सद्यश्च ग्रन्थाः संस्थाग्रण्या रुचिविशेषम् अनुसृत्य चिताः - वेदाः, इतिहासपुराणानि, कल्पवेदाङ्गग्रन्थाश् चेति।

Contribution दानम्③

Donations and sponsorship are welcome (use [contact page on our website](#)) - they help offset operating costs (eg. worker payments mainly ~1L/mo, book distribution) and plan further projects. Project-specific sponsorship opportunities are occasionally advertised on our social media accounts and on certain mailing lists.